३११८
८८

श्रीः

स्वामी रामतीर्थजी

के

(हिन्दी-उर्दू और अँगरेज़ी के)

लेख व उपदेश

(हिन्दी-भाषा में)

जिल्द तीसरी

प्रकाशक—

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग

लखनऊ

दिसंबर] द्वितीयावृत्ति [१९३५

मूल्य

साधारण संस्करण १) विशेष संस्करण १॥)

शुभ समाचार

यों तो श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ, समय समय पर अधिकारी सज्जनों व धार्मिक पुस्तकालयों को यथाशक्ति अपनी पुस्तकें बिना दाम अथवा आधे दाम पर बाँटती ही है किंतु धार्मिक सज्जनों को इस धर्म-कार्य में हाथ बँटाने का शुभ अवसर देने के लिए लीग ने यह तय (निश्चय) किया है कि जो सज्जन इस शुभ उद्देश्य से स्थायी रूप से जितनी रकम लीग के पास जमा कर देंगे, लीग उसके ब्याज से जो अधिक से अधिक ॥) प्रति सैकड़ा तक होगा प्रतिवर्ष उनके नाम से पुस्तकें बिना दाम लिए अधिकारी सज्जनों व सार्वजनिक पुस्तकालयों को निरंतर वितरण करती रहेगी। आशा है दानी सज्जन प्रसन्नता-पूर्वक इस शुभ कार्य में योग देंगे और इस रीति से यश व पुण्य दोनों के भागी होंगे।

मंत्री
श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग
लखनऊ

मुद्रक—
पं० श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग के ग्रंथ

हिंदी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०, वि० सं०
१.	श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली २८ भाग में, पूरा सेट ...	१०) १५)
	फुटकर भाग	॥) ॥)
२.	उक्त ग्रंथावली की संशोधित आवृत्ति के पहले १८ भाग, दो जिल्दों में। प्रति जिल्द ...	५) ६॥)
३.	दशादेश (राम बादशाह के १० हुक्मनामे)	५)
४.	राम-वर्षा भाग १-२	५) ६॥)
५.	राम-पत्र (गुरुजी के नाम राम के पत्र) ...	५) ६॥)
६.	वृहद् राम-जीवनी (उर्दू कुल्लियाते-राम, जिल्द २ का अनुवाद), पृष्ठ ६७२	२॥) ३)
७.	संक्षिप्त राम-जीवनी, पृष्ठ ६४ ...	।)
८.	श्रीमद्भगवद्गीता, श्री० आर० एस० नारायण स्वामी-कृत व्याख्या सहित, दो जिल्दों में, पृष्ठ लगभग २०००	४) ६)
	प्रति जिल्द	२) ३)
	आत्मदर्शी द्वारा नगीनासिंह वेदी-कृत	
९.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ४४० प्रथम आवृत्ति	१॥) १॥)
	.. द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ-लगभग ११४	२॥) ३)
१०.	आत्मसाक्षात्कार [illegible] पृष्ठ १७२	।) ।)
११.	विमल आत्मचक्षु-द्वारा आत्मदर्शन-लाभ के विचित्र रहस्य पृष्ठ १००	॥)

उर्दू में

१.	कुल्लियाते-राम जिल्द १ [illegible] वर्ष के १२ अंक), पृष्ठ लगभग ४००	१॥) २
२.	कुल्लियाते-राम जिल्द २ , अंक १ से अंक ३० सविस्तर जीवनी), पृष्ठ लगभग ४००	१॥) २
३.	राम वर्षा, दोनों भाग, पृष्ठ लगभग ४४४	५) ६॥

नं०	नाम पुस्तक।	साधा	बि०	जि० सं०
४. सवूते-राम (तुलसी के नाम राम के प्रमा। पृष्ठ २०८		॥)		॥)
५. संक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ लगभग ३३० ...		॥)		१)

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह बेदी-कृत

६. वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ४२० ...	१॥)		२)
७. मियाकल मिकाशका पृष्ठ लगभग १२० ...	॥)		१)
८. रिसाला अजाबुल-इल्म, पृष्ठ लगभग १२०	।=)		॥)
९. जगजीत-प्रज्ञ (ईशावास्योपनिषद् की शांकर भाष्यानुसार व्याख्या, पृष्ठ लगभग १०० ...	।=)		॥)

अँगरेज़ी में

१. स्वामी राम के समग्र अँगरेज़ी उपदेश व लेख, आठ जिल्दों में, पूरा सेट ...	७)	१४)
प्रति जिल्द .	१)	२)
२. पैरेबल्स आफ़ राम (उक्त उपदेशों में स्वामी राम से वर्णित समग्र कहानियाँ), पृष्ठ लगभग ५००	२)	३)
३. स्वामी राम की नोटबुक्स, दो जिल्दों में	२)	४)
प्रति जिल्द . ..	१॥)	३)
४. सरदार पूर्णसिंह कृत स्टोरी आफ़ स्वामी राम द्वितीयावृत्ति पृष्ठ लगभग ३२४	२॥)	३)
५. पं० ब्रजनाथशर्मा कृत स्वामी राम का जीवनी व उपदेशसार पृष्ठ लगभग ८०० दो जिल्दों में	४)	५)
प्रति जिल्द	२॥	३)
६. हार्ट आफ़ राम		।)
७. पोइम्स आफ़ राम		।)
८. संक्षिप्त राम-जीवनी सहित गणित पर व्याख्यान के		।)
९. प्रैक्टीकल गीता (बा० नारायणस्वरूप-कृत)		।=)

स्वामी राम के छपे चित्र भिन्न-भिन्न आकृति के

प्रति चित्र साधा ॥ तिरंगा बढ़ा =) डाक्टर

मैनेजर—श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ

निवेदन

कुछ वर्ष हुए, स्वामी रामतीर्थ के लेखोपदेश की पहली जिल्द में हम यह सूचना दे चुके हैं कि राम की हिन्दी-ग्रन्थावली के २८ भाग ज्यों-ज्यों खतम होते जायँगे, त्यों-त्यों वे दूसरी आवृत्ति के समय बड़ी-बड़ी जिल्दों में विभक्त करके प्रकाशित किये जायँगे। तदनुसार ग्रन्थावली के प्रथम ६ भाग (तीन-तीन भागों को एक-एक जिल्द में सम्मिलित करके) तीन जिल्दों में उत्तम आकार में शनैः-शनैः प्रकाशित किये गये। प्रथम की दो जिल्दों के पूर्वार्द्ध में स्वामी राम के अँगरेजी भाषा में दिये हुए उपदेशों की पहली व दूसरी जिल्द के समग्र व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद दिया गया है, और उनके उत्तरार्द्ध में कुछ उर्दू उपदेशों का हिन्दी-अनुवाद भी दिया गया है। इनके अतिरिक्त ग्रन्थावली के ७, ८, ९ भाग (जिनमें रामबर्षा का पहला व दूसरा भाग एकत्रित था) एक जिल्द में संपूर्ण रामबर्षा के नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं। आज हमें यह लिखते प्रसन्नता हो रही है कि अँगरेजी जिल्द तीसरी के समग्र व्याख्यानों व लेखों का भी हिन्दी-अनुवाद इस ग्रन्थावली के अनेक भागों में निकल चुका है और वह जिल्द में प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। यद्यपि इस जिल्द के उत्तरार्द्ध में पूर्व जिल्दों के समान उर्दू के कई एक लेखों व उपदेशों का हिन्दी-अनुवाद नहीं दिया गया है तथापि इसका पूर्वार्द्ध अँगरेजी की तीसरी जिल्द का पूर्वार्द्ध होने से इस जिल्द का नाम भी हिन्दी की तीसरी जिल्द रक्खा गया है। इस जिल्द के व्याख्यान व लेख प्रायः उन लेखों के

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध

१—(पूर्ण-लिखित) संक्षिप्त राम-जीवन-चरित	...	१
२—नित्य-जीवन का विधान		२५
३—निश्चल चित्त		६०
४—दुःख में ईश्वर		८४
५—(साधारण) बातचीत		११४
६—अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं ?	...	१३४
७—गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव		१६७
८—मांस खाने की वेदान्तिक कल्पना		१९८
९—मैं प्रकाश-स्वरूप हूँ		२२८
१०—आत्मानुभव की सहायता नं० १		२४०
११—सोऽहम्		२६१
१२—आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० २		२७०
१३— .. .. .. नं० ३		२७७
१४—उपदेश-सार	..	२८०

उत्तरार्द्ध

१—गैर मुल्कों के अखबार	२८०
२—उन्नति का मार्ग	२४८
३—सुधार	२९२
४—कर्म	२९८
५—राम-उपदेश	५१६
६—वार्तालाप	

भाग तीसरा

पूर्वार्द्ध

स्वामी रामतीर्थजी

के

अंगरेजी के लेख व उपदेश

श्रीपूर्णसिंहजी-लिखित स्वामी राम का

संक्षिप्त जीवन-चरित

(जो अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी के आरंभ में भूमिका के रूप में दिया हुआ है)

"I cannot die, though for ever death
Weave back and fro in the warp of me,
I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless Sea."

"The body dissolved is cast to winds,
Well doth Infinity me enshrine,
All ears my ears, all eyes my eyes,
All hands my hands, all minds my minds,
I swallowed up death, all difference I drank up"

मृत्यु बहु बार भी बाना बने, ताना मम की नित्य ही।
हमें तथापि न मार सकती, बात यह है सत्य ही॥
जनम हमारा कभी हुआ नहीं, पुनि संख्या सांस-जनम की।
वैसे ही अगणित हैं हमें, अनिद्र सिन्धु की लहरी॥

फेंक दो मृत देह को पर कुछ बिगड़ता क्या कभी।
फूँक दो चाहे इसे पर नष्ट होता क्या कभी॥
है अनन्तता मन्दिर मेरी काल होती नहीं कभी।
ज्योति है उस अग्नि की जो बुझ नहीं सकती कभी॥

सब नेत्र मेरे नेत्र हैं, है कान भी मेरे सभी।
विश्व में जितने हैं मन क्या पृथक् हो सकते कभी॥

यमराज से डरता नहीं मैं, काल मेरा दास है।
लोक की बहुरूपता मम प्यास की नित आस है॥

अपने पूर्व आश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम में स्वामी रामतीर्थ गोसाईं तीर्थराम एम्० ए० के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म पंजाब प्रान्त के गुजरानवाला जिले के मुरालीवाला ग्राम में दीपमालिका के दूसरे दिन सन् १८७३ ई० अर्थात् कार्त्तिक शुक्ल १ संवत् १९३० में हुआ था। गोसाइयों के वंश में उनका जन्म होने के कारण हिन्दी रामायण के सुप्रसिद्ध रचयिता गोसाईं तुलसीदासजी के वे वंशधर माने जाते थे*। ये कुछ ही दिनों के थे जब कि इनकी माता का देहान्त हो गया, और इनकी बड़ी बहिन तीर्थदेवी तथा इनकी बूढ़ी फूफी धर्मकौर ने इन्हें पाला। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी थी कि यह विचित्र बालक अपने वंश में अलौकिक बुद्धिशाली पुरुष होगा। महाभारत और भागवत आदि पुराणों की कथा सुनने में इनका मन बहुत लगता था। सुनी हुई कथाओं पर बालप्रौढ़ मति से ये मनन किया करते थे, और जो शंकायें उठती थीं, उनका उचित समाधान करते थे। इनके गाँववाले इनकी असाधारण बुद्धि, मननशील स्वभाव और एकान्त प्रेम के साक्षी हैं। ये बड़े तेज़ विद्यार्थी थे। एन्ट्रेंस (मैट्रिक) से लगाकर ऊपर तक विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सदा ही इन्होंने अति उच्च स्थान प्राप्त किया। बी० ए० में ये प्रथम हुए। गणित में तो विशेषतः प्रवीण थे, और इसी विषय में बहुत अधिक नम्बरों से एम्० ए० उत्तीर्ण हुए। लाहौर फ़ोरमैन

* अब बड़ी जाँच करने के बाद पता चला है कि जिन तुलसीदासजी के वंश से तीर्थरामजी थे, वह रामायण के रचयिता नहीं, किन्तु पंजाब प्रान्त के सुप्रसिद्ध योगी थे, जिनकी गद्दी सीमाप्रान्त में चित्राल के समीप सवात नगर में थी। पूरी जाँच पहले न होने के कारण तब भूल से वे रामायण के रचयिता समझकर लिखे गये।

क्रिश्चियन कालेज में इसी विषय के अध्यापक नियुक्त हुए और दो वर्ष तक काम करते रहे। कुछ समय तक लाहौर ओरियंटल कालेज में भी रीडर का काम किया। अपने सब शिक्षकों के ये स्नेहपात्र थे और वे सदा इन पर बड़ी कृपा करते थे। सरकारी कालेज के प्रिन्सिपल (प्रधानाध्यापक) मि० डबल्यू० बैल इनकी विशेष योग्यताओं के कारण इन्हें अति श्रेष्ठ मानते थे और चाहते थे कि ये प्रान्तीय सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठें। किन्तु गोसाईं तीर्थराम की निज इच्छा गणितविद्या पढ़ाने की थी, जिसका अध्ययन इन्होंने असीम परिश्रम से किया था। उन दिनों राजकीय छात्रवृत्ति लेकर (जिसके वे उस वर्ष अधिकारी थे) "ब्लू रिबन" (Blue Ribbon) प्राप्त करने की इच्छा से इन्होंने कैम्ब्रिज जाने का भी विचार किया था। किन्तु एक "सीनियर रैंगलर" (Senior Wrangler) मात्र होने की अपेक्षा किसी दूसरी ही लाइन में कहीं अधिक महापुरुष होना इनके भाग्य में था, इसलिये छात्रवृत्ति एक मुसलमान युवक को मिल गई। अस्तु [illegible] जुलाई १९०० में इन्होंने वनगमन किया और एक वर्ष के [illegible] ले लिया।

स्वामी राम [illegible] अत्यन्त उज्ज्वल [illegible] कान्ति के साथ [illegible] भावी गौरव [illegible] में नव जीवन [illegible] गगनभेद [illegible] में लोगों में [illegible] उठकर [illegible] वा प्रेम [illegible]

कम था, उनका निवास सदा ब्रह्म में रहता था। कुछ वर्ष हुए अमेरिका के कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने भविष्यवाणी की थी कि स्वामी राम जैसा उच्च आध्यात्मिक विचारों में पूर्णतया लीन और देहाध्यास को नितान्त भूला हुआ पुरुष जो दिन-रात निरन्तर ब्रह्मभाव में निमग्न रहता है, इस देह-बन्धन में अधिक काल तक ठहर नहीं सकता। वे वस्तुतः अपने को भूल गये थे, अथवा देह-सम्बन्धीय स्मृति उनकी शायद बहुत ही थोड़ी रह गई थी। अपना शरीर राम के लिये उत्तर जीवन का वाहनमात्र था, जैसा कि ईसा के शरीर के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था। अमेरिका में राम ने कहा था कि "Life is but the fluttering of the eagle's wings encaged in the body." "जीवन इस शरीर रूपी पिंजरे में बन्द पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट मात्र है।" कोई भी शब्द उनकी मोहिनी आकृति का चित्र नहीं खींच सकता। उनकी दृष्टि आपका उनके प्रति सम्पूर्ण भीतरी प्रेम आकृष्ट कर लेती थी। उनका स्पर्शमात्र शुष्क हृदयों में भी कवियों की सी उमंगें उत्पन्न कर देता था, और मनुष्य के मन-बुद्धि को ब्रह्मानन्द की सुगंधित हरियाली से सुसज्जित कर देता था। सभी महात्माओं के जीवन का यही लक्षण रहा है। पौराणिकों ने अपने काव्यमय वर्णन में इसका मनोहर उल्लेख कैसा उत्तम किया है कि अमुक के आगमन से सूखे वृक्षों में नई पत्तियाँ और कलियाँ निकल आईं, अंगूरों के बाग़ हरे-भरे हो गये, और सूखे सोते मानो हर्षोन्माद में स्फटिक जल की धारा बहाने लगे।

समुद्र-यात्रा में स्वामी राम को उनके अमेरिकन सहयात्रियों ने अमेरिकावासी समझा था। जापानी उनसे ऐसा स्नेह करते थे कि मानो वे उन्हीं के देश के हैं। जब वे उनके देश से अमेरिका को चल दिये थे, तब उनके अनेक परिचित जापानियों ने कहा

था कि अब भी हमें अपने कमरों में उनकी विद्युत् मुसक्यान के दर्शन होते हैं। उनके ललाट की चमत्कारिणी विशुद्धता अब भी हमें अपने प्रिय फुजीयामा हिम-शिखर की भाँति याद है। उनकी भगवे वस्त्रधारी आकृति, जो वहाँ व्याख्यान दिया करती थी, जापानी चित्रकार को अग्निस्तम्भ प्रतीत हुई, जो श्रोताओं में शब्दों की नहीं, किन्तु जीवनस्फुलिङ्गों की वर्षा कर रही थी। कैलिफ़ोर्निया में ब्रह्मज्ञान की मशाल व हिमालय पर्वत का बुद्धिमान् पुरुष कहकर उनका अभिनन्दन किया गया था, जिनके अनुभव के सामने सभ्यता के प्राचीन क्रम का उलट जाना अनिवार्य था। वे अमेरिका की सब रियासतों में घूमे और उतने ही व्याख्यान दिये, जितने दिन कि वे कोलम्बिया में ठहरे। उन्होंने कहा—"मैं बनाने आया हूँ, बिगाड़ने नहीं।" ईसाई गिरजों में उन्होंने व्याख्यान दिये। उनके व्याख्यान वैसे ही नवीन होते थे, जैसे व्याख्यानों के अपूर्व नाम। डेनर में बड़े दिन की संध्या को उनके व्याख्यान का विषय था, [illegible] "प्रत्येक दिन नये वर्ष का दिन है और प्रत्येक रात बड़े दिन की रात [illegible] अमेरिकन ने उनके व्याख्यानों का संक्षिप्त [illegible] नाम [illegible] किया है—

(१) तुम [illegible] और पर। (२) [illegible] वा अनुभव। [illegible] (३) दृष्टि-सृष्टिवाद [illegible] प्रेम व भक्ति द्वारा [illegible] (१०) भारत।

और अमेरिका में दिये [illegible] राम ने इस प्रकार दिया है

(१) मनुष्य ब्रह्म है।

(२) संसार उसकी सहकारिता करने को बाध्य है, जो सम्पूर्ण संसार से अपनी एकता अनुभव करता है।

(३) शरीर को उद्योग में और मन को प्रेम तथा शान्ति में रखने का ही अर्थ है यही अर्थात् इसी जीवन में पाप और दुःख से मुक्ति।

(४) सबसे एकता (At one ment) प्रत्यक्ष अनुभव से हमें निश्चल निश्चिन्तता का जीवन प्राप्त होता है।

(५) सकल संसार के धर्मग्रन्थों को हमें उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये, जिस भाव से हम रसायनशास्त्र का अध्ययन करते हैं और अपने अनुभव को अन्तिम प्रमाण भी मानते हैं।

दो वर्ष से भी कम में उन्होंने अमेरिका में कितना कार्य किया, अथवा जिन अमेरिकनों को उनका संसर्ग हुआ उन पर कैसे प्रभाव पड़े, इसका सविस्तर वर्णन मैं यहाँ नहीं कर सकता। किन्तु अमेरिका से भारत को लौटते समय विदाई की सभा में कुछ अमेरिकनों ने निम्नलिखित जो कविता पढ़ी थी, उसे बिना उद्धृत किये मैं नहीं रह सकता—

Like Golden Oriole neath the pines
Rama chants to us his blessed lines.
Rich freighted with the Orient's lore,
He spreads it on our western shore.
A bird of passage on the wing,
He brings a message from the King.
And this his clear resounding call—
All, all for God, and God for all!
His message given he flits afar
Like swiftly coursing meteor.

But leaves of heavenly fire a trace,
A new born love for all his race.
Adieu, Sweet Rama, thy radiant smile,
A Soul in Hades would beguile.
And though we may not meet again
Upon this changing earthly plain,
We know to thee all good must be
For thou art in God and God in thee.

डाल रसाल पै बैठी सी कोयल "राम" हमें नित गाय सुनावत।
शीरीं भरी पंडिताई से बातें हैं पूरब की जो विशेष कहावत॥
देश हमारे प्रतीची कृपा करि हैं उनको विस्तार बढ़ावत।
मारग के तो पंछी हू बने ये संदेश सुरेश को पूरो हैं लावत॥

घनघोर पुकार यों गूँजति है सुन लेइ जो चाहत याहि सुनो।
"है ईश की वस्तु सभी जग की पुनि ईश सभी के सदा ही गुनो"॥
समुझाय संदेश यों दूरि भजे द्रुत तारा है टूटत रात मनो।
पै स्वर्ग की ज्योति को लेश सो छोड़ि चले हेतु स्वजाति के प्रेम दुनो॥

प्रिय राम हमारो है [illegible] प्रणाम [illegible] जिमि औरहु बूझि परे।
मृदु हाँसी [illegible] निजावह में नव शक्ति भरे॥
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अन्य सच्चे भारतीय तत्ववेत्ता के दर्शन मुझे आज तक नहीं हुए। ऐसा उनका प्रेम था। भारत लौटने पर मथुरा में उनके कुछ भक्तों ने एक नया समाज चलाने की प्रार्थना की थी। इस पर राम ने कोरा जवाब दिया और कहा कि भारत में जितनी सभायें काम कर रही हैं, वे सब मेरी ही हैं और मैं उनके द्वारा काम करूँगा। इस समय उन्होंने हर्षोन्मत्त होकर नेत्र मूँद लिये, प्रेममय आलिंगन के चिह्नस्वरूप अपने हाथ फैलाये, और अश्रुपात करते हुए नीचे लिखे शब्द कहे, जो उनके महान् विश्वव्यापी प्रेम तथा महान् आत्मिक मौनता पर बड़ा प्रकाश डालते हैं:—"ईसाई, हिन्दू, पारसी, आर्यसमाजी, सिख, मुसलमान और वे सभी जिनकी नसें, अस्थियाँ, रक्त और मस्तिष्क की रचना मेरे प्रिय इष्टदेव भारत भूमि का अन्न और नमक खाकर हुई है, वे सब मेरे भाई हैं, नहीं नहीं, मेरे ही प्राण हैं। कह दो उनसे मैं उनका हूँ। मैं सबको आलिंगन करता हूँ। मैं किसी को परे नहीं करता। मैं प्रेम हूँ। प्रकाश की भाँति प्रेम प्रत्येक वस्तु को प्रकाश के चमत्कार से आच्छादित करता है। ठीक ठीक मैं प्रेम की कान्ति और प्रवाह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ। मैं सबसे समान प्रेम करता हूँ।"

"I shall shower oceans of love
And bathe the world in joy!
If any dare oppose, welcome! come!
For I shall shower oceans of love,
All societies are mine! mine welcome! come!
For I shall pour out floods of love.
Every force is mine, small or great, welcome! come!
O! I shall shower floods of love
Peace! Peace!"

घनघोर मेघ घेरि के गगनमंडल, बड़े-बड़े बूँदन सों प्रेम बरसावेंगे।
स बढ़ाय के करि है प्रतिरोध कोऊ, बाँह धरि वाको वाही प्रेम में न्हवावेंगे॥
यें बड़ी औ भारत समुदाय जेते, उन सो कदापि नाहीं विलग बनावेंगे।
कियाँ हैं जौन स्वागत सभी को आज, शान्ति सुख प्रेम की बहिया बहावेंगे॥

राम विचित्र पुरुष थे। वे वर्तमान और भावी मानव-जाति की विश्वव्यापी एकता में हृदय और चित्त से अपने को विलीन कर देना चाहते थे। जो अद्भुत अभेदता उनकी अंग्रेजी कविता में कुछ स्पष्ट हुई है, वह उनके इस लोकयात्रा के अल्पकाल का महान् कार्य है। पूर्ण आत्मानुभव की प्राप्ति-निमित्त उन्होंने दिन-रात प्रयत्न किया। जहाँ कहीं उनकी दृष्टि पड़ी, उन्हें सब कुछ ईश्वरमय दिखाई दिया। वे अनुभवी योगी थे। उनमें बुद्धि और भाव का अत्यन्त अनुशीलन मिश्रित रूप से था। रावी नदी के तट पर उनकी अनेक रात्रियाँ योगाभ्यास में बीतीं। अनेक रातों वे इतना रोये कि सवेरे बिछौने की चद्दर भीगी मिलती थी। कहा जाता है कि अपने पूर्वाश्रम में जब वे कट्टर ब्राह्मण थे और उनका हृदय प्रेम या भक्ति के संस्कारों से परिपूर्ण था, उन दिनों सनातनधर्म-सभाओं में भक्ति या कृष्ण पर व्याख्यान देते समय उनके मुख से जितने शब्द निकलते थे, सभी [illegible] निकलते थे। अपनी इस आध्यात्मिक [illegible] वे कहा करते [illegible] कि अनेक बार [illegible] नाग के [illegible] उन्होंने यों [illegible] अवस्था थी। [illegible] पन के सिवाय [illegible]

वे जन्म से [illegible] और दीनता [illegible]

कठोर तथा दुस्सह कायक्लेशों में बीता। यहाँ तक कि कभी कई-कई दिन तक लगातार उन्हें भोजन भी नसीब नहीं होता था। आहार की कमी के होते हुए भी वे आधी-आधी रात तक पढ़ने में परिश्रम करते थे, और प्रायः गणित के प्रश्नों में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि उन्हें घंटों का बीतना जान ही नहीं पड़ता था और सवेरा हो जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि भविष्य में उन्हें जैसा जीवन व्यतीत करना था, वे जान-बूझकर उसके लिये अपने को तैयार कर रहे थे। अध्यापक होने के पूर्व ही असीम स्वावलम्बन, जिसे वे बाद में निश्चल निश्चिंतता कहते थे, प्रौढ़ विश्वास, कुछ गम्भीर निश्चय और महान् प्रण-शक्ति वे अपने में उत्पन्न कर चुके थे। और ऐसे ही उन्होंने गणितशास्त्रीय मन का विकास भी अपने में कर लिया था कि जो अनुभवसिद्ध तथ्यों की मालूमात के लिखने में यथार्थ, अपनी तर्क-शैली (युक्ति) व विश्लेषण में ठीक और ऐसे ही परिणामों के निकालने में नितान्त स्पष्ट और असंदिग्ध उतरता था। उन्हें पदार्थविज्ञान से प्रेम था और रसायन तथा वनस्पतिशास्त्र का शौक़ था। तत्त्वविज्ञानशास्त्र में विकासवाद उनका विशेष विषय था। उन्होंने समस्त पश्चिमीय और पूर्वीय दर्शन-शास्त्रों का अपने ढंग से पूरा-पूरा अध्ययन किया था। उन्होंने शंकर, कणाद, कपिल, गौतम, पतञ्जलि, जैमिनि, व्यास और कृष्ण के ग्रन्थों के साथ-साथ कांट, हेगल, गेटे, फ़िक्टे, स्पाईनोज़ा, कोम्टे, स्पेंसर, डार्विन, हैकल, टिंडल, हक्सले, स्टार्ट जार्डन और प्रोफ़ेसर जेम्स के ग्रन्थों में भी पारदर्शिता प्राप्त की थी। फ़ारसी, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत-साहित्यों में वे दक्ष थे। सन् १९०६ ई० में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था और प्रत्येक मंत्र के पूर्ण पंडित थे। वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक शब्द का विश्लेषण वे शब्दशास्त्र की

ता से करते थे। इस प्रकार उन्होंने अपने को विलक्षण द्वान् बना लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी आयु के ास वर्षों के प्रत्येक क्षण का उन्होंने अत्यन्त सदुपयोग किया । अपने अन्त समय तक वे कठोर परिश्रम करते रहे। मेरिका में दो वर्ष के प्रवासकाल में, सार्वजनिक कार्यों में ार श्रम करते हुए भी, प्रायः समस्त अमेरिकन साहित्य उन्होंने ढ़ डाला।

संसार के सब ग्रन्थकारों, अवतारों वा महात्माओं, कवियों और योगियों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते समय वे एक अद्भुत रसिकता का परिचय देते थे। उनकी अनोखी तथा निष्पक्ष आलोचना में किसी प्रकार का पाण्डित्य प्रदर्शन, बनावटी अभिमान की नाममात्र छाया, अथवा कोई निस्सार बात नहीं होती थी। बातचीत करते समय वेद से लगाकर किसी नवीन से नवीन मौलिक पंक्ति तक का जो विचार उनके दिल पर चुभ जाता था, वह यथायोग्य उनके विचारों के समर्थन में सहायक ही होता था तथा उन्हीं का अनुभव-सिद्ध सत्य उसे प्रकट करना पड़ता था। वे अत्युच्च कोटि के विद्वान्, तत्त्वज्ञ और ब्रह्मवादी थे। बुद्धि की उन्नति के साथ-साथ वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति को भी बड़े ऊँचे शिखर तक पहुँचा सके थे। लाहौर की घनी बस्ती अब उनकी आत्मोन्नति अधिक कर सकने में असमर्थ थी। जो कुछ समय उन्हें मिलता था, वे उसे उपनिषदों और प्राचीन आर्य-ब्रह्मवेत्ता के वंशजों के विचार में हिमालय की पहाड़ियों तथा जंगलों में बिताते थे।

हृषीकेश के निकट, ब्रह्मपुरी के घने वन में स्वामी राम को अभीष्ट सिद्ध हुआ था—अर्थात् उन्हें आत्मा का साक्षात्कार हुआ था। यही वह स्थान है जहाँ उन्हें मन की उस भयातीत आनन्दमय एकता की प्राप्ति हुई थी कि जिसमें न भेद है और

दिखाई देता था। प्रकृति के आत्मा (असली स्वरूप) से एक होना ही वे अपना वास्तविक आचरण समझते थे। किसी मनुष्य को इस केन्द्र में डाल दो और फिर उसे वहाँ अकेला छोड़ दो अर्थात् अकेला विचरने दो, तो मनुष्य और सदाचार के सर्वोत्तम नियमों को उसके पास आप सुरक्षित समझिये। मनुष्य वहीं गढ़े जा सकते हैं, न कि विद्वत्ता और पाण्डित्य के पुतलीघरों में। वहाँ मनुष्य को बैठकर अपने स्वरूप अर्थात् अपने आत्मा के दर्शन भर कर लेने दीजिये, फिर निश्चय रखिये कि वह अपनी अचल और दुर्जय स्वरूप चट्टान पर खड़ा होगा। "कोई बाहरी चट्टान मुझे आघात नहीं पहुँचा सकती," आत्म-साक्षात्कार ही धर्म है। आत्मशक्ति का यह साक्षात्कार कि "मेरा आत्मा ही वह शक्ति है, जो अखिल विश्व को अनुप्राणित करता है, और जड़ तथा चेतन की प्रत्येक नस की गुप्त शक्ति है," प्रत्येक सर्वसाधारण मनुष्य को भी उन महाविजयों के राजमार्ग पर डाल देता है कि जो मनुष्ययोनि में कठिन से कठिन है। मनुष्य की सर्वसफलताओं का यही मूल-मंत्र है। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या के मंदिर के उपासकों के सिवाय और किसी का भी हृदय शुद्ध, मुखमण्डल प्रभा-पूर्ण और स्वभाव हँसमुख नहीं हो सकता। मेरी ब्रह्मविद्या कोई मत नहीं है, न पंथ वा संप्रदाय ही है, बल्कि जीवन के शाश्वत अनुभव से श्रेष्ठ बुद्धिमानों द्वारा सिद्ध किये हुए परिणामों का समूह है।

सर्वोत्तम मानवीय काव्य उन्होंने प्रकृति में ही पढ़ा था, और सविस्तर शीतल हिम और पहाड़ी दृश्यों के सिवाय उनके हृदयाग्नि को कौन बुझा सकता था। किसी एक घर में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। सबसे अधिक सुखी वे तभी होते थे, जब हिमालय के वनों में नेत्रों को अर्ध बन्द किये वे विचरते थे और महान् पर्वतराज की ओर कनखियों से देखते थे।

वे अपने समय के वेदान्त के एक बहुत बड़े आचार्य थे। वे समस्त हिन्दू धर्मग्रंथों के प्रत्यक्ष प्रमाण थे। विश्वात्मा से अभेदता रखनेवाले श्रेष्ठ हिन्दुओं के वे आदर्श गौरव थे। बुद्ध-धर्म (Law) के वे महान व्याख्याता थे। पूर्ण सदाचार, पूर्ण संयम और धर्माचरण के वे पक्षपाती वा प्रचारक थे, और मनोविज्ञान को मानव-चरित्र का पथ-प्रदर्शक बताते थे। उच्च कोटि का परोपकार उनके चित्त का साधारण स्वभाव था। वे दिन-रात कार्य और श्रम में लगे रहते थे, किन्तु अन्य लोगों की तरह अपना एक क्षण भी हिन्दू जनता की दशा सुधारने में नष्ट नहीं करते थे। उनका कथन था:—"केवल एक रोग है और एक दवा। राष्ट्र केवल दैवी विधानानुकूल से नीरोग और स्वाधीन किये जा सकते हैं। उसीसे लोग ऋषि और देवों से बढ़कर बनाये जा सकते हैं। ईश्वर में स्थित हो; बस सब ठीक है; दूसरों को ईश्वर में स्थित करो, और सब ठीक हो जायगा; इस सत्य में विश्वास करो, तुम्हारी रक्षा होगी; इसका विरोध करो, तुम कष्ट पाओगे।" वे अपने श्रम के लिये कोई पुरस्कार नहीं चाहते थे। अमेरिका से लौटते समय उन्होंने वहाँ के अपने कार्य-प्रशंसात्मक पत्रों की गठरी समुद्र में फेंक दी थी। अपनी मातृ-भूमि की ओर से अमेरिका में जो कार्य उनसे हुआ था, उसका ब्योरा केवल एक बार अमेरिका जाने ही से प्रकट होगा। अन्त में यह कहा जा सकता है कि ऐसे अलौकिक बुद्धिमानों का आगमन इस संसार में अल्प काल के ही लिये होता है। वे अपनी कल्पना को पूरा करने को नहीं, किन्तु दूसरों को राह सुझाने के लिये आते हैं। बिजली की चमक की तरह उनका कार्य केवल संकेतात्मक होता है, पूर्त करने हारा कदापि नहीं। वे मनुष्य को राह दिखानेवाले कुछ मन्त्र बताकर चंपत हो जाते हैं। इस प्रकार का प्रत्येक महापुरुष अपने जन्म-काल में

कुछ आवश्यक निर्माणात्मक शक्तियों का केन्द्र होता है। वे अपने विचित्र ढंग से मनुष्यों का प्रेम अपनी ओर खींच लेते हैं और जब लोग उन पर निर्भर करने लगते हैं, तब वे लोगों को बड़ी ही व्याकुलता की दशा में छोड़कर चल बसते हैं, ताकि लोग सावधान हों और अपने पैरों पर खड़े हों।

मनुष्य की आन्तरिक एकतावाला स्वामी राम का सिद्धांत इस भारतरूपी छोटे से संसार के समस्त परस्पर विरोधी धर्मों और सम्प्रदायों का निस्संदेह एक बड़ा अपूर्व समन्वय है। उनकी प्रेम की शिक्षा राष्ट्रीय और व्यक्तिगत उद्योगशक्ति के अपव्यय रोकने की दवा है, जिससे कार्य और कार्यशीलता की मात्रा बढ़ती है। पदार्थ-विज्ञान और धर्म के बिखरे हुए समस्त तथ्यों का संयोग-रूप उनका चरित्र मानवीय आचरण के लिये नित्य आदर्श है। उनका एकमात्र सार्वजनिक कार्य जनता को उनकी अपनी अनभिज्ञता और दासता से मुक्ति कराना था। उनका व्यक्तित्व मनुष्य-मात्र के लिए स्वाधीनता और स्वर्गता का आकाशी दीपक था। क्योंकि उनका गान इस प्रकार था—

1	2
No, no one can tone me.	The world turns aside
Say, who could have injured	To make room for me;
And who could alone me?	I come Blazing Light
No, no one can tone me	And the shadows must flee.
3	4
I come, O you ocean	O mountains, Beware
Divide up and part,	Come not in my way.
Or parched up, & scorched up	Your ribs will be shattered
Be seized up, depart	And tattered to-day

5

O Kings and Commanders
My fanciful toys !
Here's a Deluge of Fire,
Line clear ! my boys !

6

Advisers and Counsellors !
Pray, waste not your breath,
Yes, take up my orders,
Devour up, ye Death.

7

Go, howl on, O winds,
O my dogs ! howl free,
Beat, beat, Storms !
O my Bugles ! blow free.

8

I ride on the Tempests,
Astride on the Gale,
My Gun is the Lightning,
My shots never fail.

9

I chase as an huntsman,
I eat as I seize,
The hearts of the mountains,
The lands and the seas.

10

I hitch to my chariot
The Fates and the Gods,
With thunder of cannons
Proclaim it abroad.

11

Shake ! shake off Delusion,
Wake ! Wake up ! Be free
Liberty ! Liberty !
Liberty ! Om !!

सकहि हमहिं को क्षति पहुँचाई, करे पूर्ति अस नहिं क्षमताई ।
सके मनाय हमें को भाई, कुपित करे नहिं यह मनसाई ॥ १ ॥
हटत देख मोहि जग एक ओरा, छोड़न हित शुभ मारग मोरा ।
जगमग ज्योति हमारे आवत, सगरी छाया आप परावत ॥ २ ॥
सुन सागर अब मोर अवाई, बीच फाटि कर मारग भाई ।
अथवा जर भुनि बन जा छारा, भगे बिना नहिं तव निस्तारा ॥ ३ ॥
सुनहु कान दे भूधर मोरी, मारग त्यागि हटहु एक ओरी ।
कुशल नहीं नतु तुमरी आजू, गरद मिलहिं सब अस्थि-समाजू ॥ ४ ॥

सेनानायक नृपति सब मम क्रीड़ा के लाल।
वहिया है यह वह्नि की भाग बचहु बेहाल ॥ ५ ॥
पारिषद हु अरु सचिव समाजा, बकहु व्यर्थ कृपया नहीं आजा।
अवशि करहु मम आज्ञा पालन, काल करहु भक्षण दुहुँ गालन ॥ ६ ॥
पवन जाइ गरजहु अति घोरा, कूकर मम भूकहु बरजोरा।
आँधी चलहु भयंकर भारी, भोरि दुंदुभी बजहु सुधारी ॥ ७ ॥
पवन प्रचण्ड हमारो वाहन, अन्वड़ चढ़े चलत हम राहन।
है बिजली बन्दूक हमारी, लक्ष्य न चूकत हौं गुणधारी ॥ ८ ॥
मनो अहेरी पाछे धावत, करत कौर ज्यों ही धरि पावत।
गिरिवरगण के हृदय महन्ता, भूमि खण्ड औ जलधि अनन्ता ॥ ९ ॥
तोप शब्द घोषित करहु दूरि-दूरि सब जाय।
भाग्य और देवन सबहिं रय निज लेहुँ झुलाय ॥१०॥
उठहु जगहु हे मीत ! त्यागि देहु माया सबल।
ॐ स्वाराज्य पुनीत जपहु सदा मानस विमल ॥११॥

अपने ही तत्त्वज्ञान (वेदान्त) पर उनकी अन्तिम घोषणा इस प्रकार है—

Pushing, marching labour and no stagnant Indolence;
Enjoyment of work as against tedious drudgery;
Peace of mind and no canker of Suspicion;
Organisation and no disaggregation,
Appropriate reform and no conservative custom;
Solid real feeling as against flowery talk;
The poetry of facts as against speculative fiction;
The logic of events as against authority of departed authors;

Living realization and no mere dead quotations,
Constitute Practical Vedanta.

जड़ आलस को काम कछु चलत बढ़त श्रम नेम।
येमन की तजि चाकरी सुघर काज सो प्रेम॥
शंक के कीट भगाय के दूरि सुशान्त अलापन में मन राखैं।
नित छोड़ि विघातन को बद रंग सुचारु सवारन को रस चाखैं॥
हैं साँचे सुधारन के मद भीजे औ लीक की रीति को नाँव न भाखैं।
बनावें नहीं मुख सों बतियाँ लहरें गहरी हियरे अभिलाखैं॥
साँची बातें जोरिके काव्य करे नव रंग।
त्यागि कल्पना-डोरि को सेवत तथ्य पतंग॥
हम देते नहिं मृतन के अंयन केर प्रमाण।
तरकावलि घटनान की सकल शास्त्र को प्राण॥
जीवित अनुभव घनघटा बरसौ तरक सुनीर।
करों किनारे बाँधिके अवतरणन बेहीर॥

किसी व्यक्तित्व और दलबंदी से व्याकुल व क्षुभित न होकर जो महावाक्य अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि पर निरन्तर मनन से एकाग्रता और समाधि होती है, वह स्वतः ही शक्ति, स्वतंत्रता और प्रेम में परिणत हो जाती है। यह असीम ब्रह्मत्व जो देह के प्रत्येक रोम में फड़क रहा है, यह शक्तिशाली अद्वैत, यह प्रबल भक्ति, यह प्रज्वलित ज्योति ही है, जिसे शास्त्र अचूक ब्रह्मशर कहते हैं।

हे डगमग, चंचल, संशयात्मक चित्तो! उत्साह-शून्य धर्मपरायणता और विधर्मपरायणता को अब छोड़ो। सब प्रकार का सन्देह और 'अगर मगर' निकाल डालो, सब मत-मतान्तर तुम्हारी ही सृष्टि हैं। सूर्य चाहे पारे की थाली सिद्ध हो जाय, पृथ्वी उदराकार या खोखला मण्डल भले ही प्रमाणित हो जाय, वेद सम्भव है, पौरुषेय ठहराये जा सकें, किन्तु तुम ईश्वर के

सिवाय और कुछ नहीं हो सकते, और कुछ नहीं हो सकते। तुम्हारी ईश्वरी भावना से निकला हुआ एक भी स्वर वा शब्द घास की पत्तियों, बालू के कणों, धूलि के बिन्दुओं, हवा के झकोरों, वर्षा की बूँदों, पक्षियों, पशुओं, देवताओं और मनुष्यों को ग्रहण करना पड़ेगा। गुफाओं और वनों पर वह गर्जेगा, झोपड़ियों और गाँवों में घनघनायगा। बस्तियों और गलियों में गूँजेगा, नगरों से नगरों में जायगा, तथा समस्त संसार को परिपूर्ण और रोमाञ्च कर देगा। वाह री स्वाधीनता! स्वतंत्रता!

किसी नदी के पहाड़ी सोतों को सुमेरु के विपुल खजानों से भर दो, फिर उस नदी की सब शाखायें, धारायें और नहरें खेतों को समृद्धिशाली करने के लिए खूब सींचती हुई भरपूर बहेंगी। जीवन के सोते, प्रेम के मूल अर्थात् उद्गम स्थान और प्रकाश व सुख के झरने, अनन्त शक्ति, पवित्रता और ईश्वरभावना, इन सबको परिच्छिन्नात्मा का आलिंगन करने दो, और उसे स्थानच्युत करने दो, उसके भावों को तरबतर करने दो, मन को परिपूर्ण करने दो, फिर हाथ, पैर, नेत्र, नहीं-नहीं, शरीर की प्रत्येक स्नायु, वरन अड़ोस-पड़ोस तक एकस्वरता वा एकता का स्वर सभी अवश्य उत्पन्न करेंगे और शक्ति की बाढ़ को जगमगा देंगे।

राजसिंहासन पर नरेश की उपस्थिति-मात्र से दरबार में व्यवस्था स्थापित हो जाती है। इसी प्रकार से मनुष्य के अपने ईश्वरत्व का, अपनी निजी महिमा का आश्रय लेते ही समस्त जाति में यथाक्रम और जीवन का सञ्चार हो जाता है।

ऐ अल्प विश्वासियो! जागो! अपने पुण्य प्रताप में जागो! और तुम्हारी निजी राजकीय तटस्थता की एक दृष्टि, तुम्हारी दिव्य निश्चिंतता का एक कटाक्ष रौरव नरकों को मनोहर स्वर्गों में बदल देने में पर्याप्त होगा।

ानुभव के साधन

s to Realisation)

आत्मानुभव के साधन

(Aids to Realisation)

स्वामी रामतीर्थ

नित्य-जीवन का विधान

(देहत्याग से कुछ ही मास पहले स्वामी राम से कुछ एक पत्र अंग्रेजी भाषा में पीरवासी नारायण को लिखे गये थे, जिनको तत्परचात् स्वयं स्वामी राम ने [illegible] में विस्तार देकर संपादित

१ बिछुड़ते हैं प्रियजन, अलग होते दुश्मन।
मरे जाते हैं बन्धु, मिटते हैं बन्धन॥
हमारी प्रणाली जो सुन्दर बनी हैं।
भले ही रहें वा बिगड़ जावें इक दिन॥
नसेंगे ये कर्दम; औ कलरव मचाते।
ये पक्षी भी दुनिया से उठ जायँ इक छन॥
मुरझा जायँगे फूल, फूले हैं जो आज।
छाया से ज्योति का होता परिवर्तन॥
बदलतीं हमारी प्रणय प्रीतियाँ भी।
वो सुन्दर स्वरूपों का होता विसर्जन॥
नाम सम्मान होते दुनिया के हैं नष्ट।
सब दिखावट, विभव, ठाट हैं व्यर्थ अरु भ्रष्ट॥
क्षणिक हैं सभी, है न इनमें कोई बल।
है दुनिया तमाशा जो लेती हमें छल॥
ये सुन्दर मोहक वस्तु सभी, प्यारी जो मन को लगती हैं।
पहले अपना मन हाथ में कर, छल से फिर मार गिराती हैं॥

२ चाहे सर्वोत्तम कुछ होवे, जिसको आधार बनाते हैं,
होवे वह प्रथम चाहे अन्तिम जिस पर विश्वास बढ़ाते हैं।
जैसे ही करते स्पर्श चरण ये झट ही क्षीण हो जाते हैं,
हम जैसे प्यार लगे करने, प्रिय पात्र तुरत भग जाते हैं॥
हम सोचा करते मन ही मन, विश्वास करें इन पर हम दृढ़,
इतने में दुर्बल फूट पड़े, फिर दृढ़ चलें भग में हम सब॥

३ क्या सचमुच में जो कुछ भी है—
वह सब क्षणिक का स्वप्न है?
क्या 'मैं', 'तुम', 'वह' का भेद सभी,
कुछ भी नहीं विशिष्ट ही सत्य है?

दुनिया के सब नज़ारे कैसे बदल रहे हैं;
पै इनमें एक अविकल देखो चमक रहा है।
इन भासमान मृत्यु, दुःख और दर्द में वह
पोशाक भर बदल कर फिर फिर प्रकट रहा है॥
उस पर ही प्रेम रक्खो न कि वस्तु, आवरण पर
नित आवरण बदल कर वह दूर कर रहा है॥
प्राचीन वस्त्र छूटे; नित्य स्वच्छ सुन्दर पहने
देखो अचिन्त्य अनुपम नव रूप धर रहा है॥
पहले प्रपंच टूटे, नूतन प्रकट हुए हैं,
दोनों ही वस्तुओं में, वह एक सा बसा है॥
दुःख, हानियों में कैसी माधुर्य्य की घटा है,
इनमें ही व्यक्त होता, यों ही वह खुल रहा है॥
उसकी यह नग्नता का शोभा मनोहर क्या!
पर नव-वदन-छटा तो उससे मधुरतरा है॥

पर्दा उसने चुना है निज मुख ढकने को यह झिझरीदार।
मन्द पवन औ गगन, नदी औ कुसुम आदि का सब विस्तार॥
चाहो जैसे छिपो भले ही, मुझसे छिपना है दुश्वार।
पर्दे तुम्हें नहीं छिपाते, उल्टे करते खूब उघार॥
एक रूप के बाद दूसरे इसीलिये बस आते हैं—
देख सकें हम उसको जिसको वे इस तरह छिपाते हैं॥

५ अहा संसार एक माला है, भरा जिसमें अनेक दाना है ॥
इक दाने को देख तुम नसते, "नहीं कोई तत्व इनमें" कहते ॥
एक के बाद इक बिगड़ता है किन्तु धागा कभी न घटता है ॥
कैसा सुन्दर दिव्य धागा है, हमारा है, वही हमारा है ॥
है स्वर्ण सूत्र पै मेरा दिल—क्यों न 'रूप' जायँ मिट्टी मिल ॥

६ प्रभातकालीन माधुरी ज्यों क्षणिक सदा 'नाम रूप' ही त्यों।
प्रपंच माया यह झूठा रचली—अभी बनी है, अभी बिगड़ती ॥
अनन्त है जो रवि तेजवाला, है जो कभी न बदलनेवाला।
उस एक के ये स्वप्न भर हैं, पदार्थ जो सर्व भासते हैं ॥

७ दोस्त दुश्मनों पै रक्खूँगा मैं हरगिज़ विश्वास नहीं।
दिव्य दर्शनों पर भी होगा हरगिज़ मुझे भरोसा नहीं ॥
शारीरिक नैरोग्य तथा पाने को पार्थिव वैभव भी।
मैं पर्वाह भला क्या करता? मैं और मेरा प्यारा भी ॥
जो हैं भासमान दुनिया में, उन पै कभी न भूलूँगा।
इन शतरंज बिसातों, गुड़ियों को निर्मन होकर मैं देखूँगा ॥
मेरा प्यारा मिला मुझे, अब उसको कहीं न खोऊँगा;
है सब ओर, उसे मानूँ मैं, प्रेम में उसको देऊँगा ॥
अनेकता में है 'एक' तत्व जो, केवल है जो सत्य वही।
है सर्वस्व हमारा वैभव, टेर रहा हूँ उसको ही ॥
ऐसा पक्का दोस्त वही है, चेला औ गुरु भी मेरा,
जनक हमारा, प्यारा बच्चा, वही-वही घर भी मेरा ॥
प्राण-वल्लभा, अथवा पति मम, स्वयं, और जीवन मेरा *
वही दीप्ति की दीप्ति यही! है केवल-मात्र स्वत्व मेरा ॥
कैवल्यनिधि और शान्ति हमारी, जीवन-मूरि हमारा 'राम'
अनेकता में है 'एक' तत्व जो वही, वही है जो सतनाम ॥

* (अथवा एक अर्थ में)—मैं ही जीवन-धन मेरा।

[illegible] ([illegible]) [illegible] है।
[illegible] विधान [illegible] है [illegible] ([illegible])
[illegible] है। [illegible] इस त्रिशूल [illegible] पर
[illegible] है, [illegible] यह [illegible] हो जाता है।
[illegible] यह ([illegible]) [illegible] ([illegible])
[illegible] विधान [illegible] है, जो सबके सांसारिक स्नेह को भस्म
[illegible] देती है, मूढ़ मन को [illegible] देती है, और इससे बढ़कर
[illegible] को शुद्ध करती तथा आध्यात्मिक रोग के सर्व प्रकार
के कीड़ों को नष्ट कर देती है।

धर्म इतना विश्वव्यापक (सार्वलौकिक) है और हमारे जीवन से इतना मार्मिक सम्बन्ध रखता है, जितना कि भोजन-क्रिया। सफल नास्तिक मनुष्य मानो अपने ही भीतर की इस पाचन विधि को नहीं जानता है। दैवी विधान हमें छुरे की नोक के जोर से धार्मिक बनाता है, कोड़े लगाकर हमें जगाता है। इस विधान से निस्तारा (छुटकारा) नहीं। दैवी विधान सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। समस्त रूप और व्यक्तियाँ दैवी विधान के सागर में केवल बुलबुले-से हैं। सत्य की व्याख्या ऐसे की गई है कि "सत्य वह है, जो (एकरूप, एकरस) निरन्तर रहे, अथवा रहने का आग्रह करे।" अब इस नाम-रूपमय संसार में ये सब सम्बन्ध, देह वा पदार्थ, संस्थायें और सभायें कोई भी ऐसी नहीं, जो इस त्रिशूल के विधान के समान सदा एकरस रह सकें।

ये मूढ़ और अदूरदर्शी जीव इस आदर्श रूप विधान की अपेक्षा बाह्य रूपों (व्यक्तियों) को क्यों अधिक प्यार करते हैं? इसलिये कि अज्ञान के कारण उनको ये व्यक्तियाँ वा बाह्य रूप निरन्तर एकरस रहनेवाले सत्य पदार्थ दिखाई देते हैं, और दैवी विधान एक अस्पर्श्य क्षणिक मेघ ([illegible] evanescent cloud) भान होता है।

मुसलमान और ईसाई जब इस दैवी विधान या परमात्मा को अल्लाह (ईसाई. Jealous .) और क़ादर (क्रूर या क्रोधी. Terrible.) कहते हैं, तो कोई ग़लती नहीं करते। निस्सन्देह यह नियम किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष करनेवाला (या लिहाज करनेवाला) नहीं है। किसी मनुष्य को संसार की किसी वस्तु से चित्त लगाने दो और विशुद्ध रूपी प्रकृति का अनिवार्यतः क्रोध उस पर अवश्य ही घटित होगा। यदि लोग इस 'सत्य' के ग्रहण करने में सुस्त हैं, तो वे इसलिये हैं कि उनमें ठीक-ठीक अवलोकन की शक्ति नहीं। वे प्रायः अपने व्यक्तित्व-सम्बन्धी बातों में कारण को उसी घटना में ढूँढ़ना पसन्द नहीं करते, बल्कि अपने दोषों के लिये दूसरों को दोष झट-पट देने लग जाते हैं, और एक निष्पक्ष साक्षी की भाँति अपनी कोपवृत्तियों और भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले परिणामों पर विचार-पूर्वक दृष्टि डालना जानते ही नहीं। धोखा हमें अवश्य मिलेगा, जब हम इन बाह्य रूपों पर विश्वास करेंगे, या जब हम अपने अन्तर्हृदय में इन मिथ्या पदार्थों और व्यक्तियों को वह स्थान देंगे, जो केवल एकमात्र सत्य के लिये उपयोगी है, या जब ईश्वर के स्थान पर हम मूर्त्तियों (बुतों. ...) को अपने हृदयसिंहासन पर बिठलावेंगे। अन्वयव्यतिरेक का नियम ... ...nd ...) तो अनात्मा को असत्यता के नियम को बिना किसी उपेक्षा के स्थिर करता है

कितनी बार ऐसा नहीं होता कि हम पूर्ण भद्र पुरुषों के वाक्यों पर चित्त लगाने से और उनमें ईश्वर में भी बढ़कर विश्वास रखने से उनको उनके वाक्यों के समान भी भद्र नहीं बने रहने देते ? कितनी बार हम दैवी विधान को भुला देने वाला मोह अपने बच्चों के साथ करके उनकी मृत्यु वा नाश

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद ।
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद ।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो लोकान् वेद ।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो देवान् वेद ।
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो वेदान् वेद ।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो भूतानि वेद ।
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद ।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि भूतानि, इदं सर्वम्, यदयमात्मा ॥ ७ ॥

(बृह० उप० अ० ४, मा० ५, खं० ७)

अर्थ—ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र (किसी दूसरे के आश्रय) ब्राह्मणत्व को समझता है। क्षत्रियत्व उसे परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को देखता है। लोक उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणधारी उसको परे हटा देते हैं, जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र देखता है। प्रत्येक वस्तु उसको परे हटा देती है, जो वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये प्राणधारी, यह प्रत्येक वस्तु, जो है, यह सब आत्मा ही है। (श्रुति)

ये भासमान पदार्थ जो भोले प्राणियों को आकर्षण करते हैं, देखने में तो भगवान् कृष्ण की भोली मूर्ति के समान हैं, मन रूपी सर्प उनको कट निगलता जाता है; परन्तु भीतर पहुँचते ही ये पदार्थ अन्दर से छुरा घुमो देते हैं, मन रूपी सर्प के उदर को फाड़ डालते हैं; और सब लोग चिल्लाते

न दी होगी, या उनका स्पष्टीकरण और समर्थन न किया होता।

त्याग का नियम (विधान) एक पक्की सचाई है। कोई सारहीन (वास्तविक) कल्पना (flimsy phantom) नहीं। राष्ट्रों के राष्ट्र इन पैगम्बरों, अवतारों और नेताओं के केवल काल्पनिक भ्रमों से मोहित नहीं हो सकते थे। शताब्दियों की शताब्दियाँ बेचारे बुद्धि-भ्रष्टों की केवल कल्पना से ही नहीं बीत सकती थीं।

अपने दुःखों के असली कारण को न जान कर (जो कि दैवी विधान के प्रतिकूल चलना है) लोग अपने रोग के बाह्य लक्षणों को अर्थात् बाह्य दशाओं को दोषी ठहराने लग जाते हैं। जिस प्रकार अस्पष्ट स्वप्न (misty dreams) विस्मृति के अर्पण कर दिये जाते हैं, अर्थात् नितान्त भुला दिये जाते हैं, उसी प्रकार लोगों के अच्छे-बुरे आचरणों और संवादों (शब्दों) को अपने चित्त से नितान्त धो डालना चाहिये। स्वप्न चाहे भयंकर हो, चाहे मधुर, हम उसके साथ लड़ने या उसके समाधान करने का यत्न नहीं करते, बल्कि उल्टे हम अपने पेट को ही पीड़ित करते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे लोग जो भी मिलें, उनकी हमें पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिये, और अपनी आध्यात्मिक दशा उन्नत करनी चाहिये। अपने और ईश्वर के बीच में इन भासमान अनिष्टों वा भाग्यों को खड़ा न होने दीजिये। कोई अपमान और दोष इतने भारी नहीं कि जिनको क्षमा प्रदान करने से मुझे संतोष मिले।

किसी वस्तु को ईश्वर से बढ़कर मत समझो, ईश्वर के बराबर भी किसी का मूल्य मत करो। निन्दा-स्तुति और व्याधि सब के सब एक समान घातक हैं, यदि हम अपने को इनके अधीन समझें। अपने को ईश्वर भान (निश्चय) करो,

अधिकारों को चाहता है, वह मानो मुखाभिमान (vanity) के शिखर पर मिलों का भवन खो जाता है। वेदान्त की स्वतंत्रता (मुक्ति) कुल इस परिच्छिन्न देहात्मा व्यक्तित्व और देह) के लिये दैवी विधान से छुटकारा नहीं है। यह तो God (ईश्वर) को ठीक उलट देना, अर्थात् dog (श्वान) बनाना है।* लाखों प्राणी इस भूल के कारण प्रति घड़ी नाश होते हैं। इस दैवी विधान के क्रम को मूर्खता-पूर्वक उलट देने से हजारों मस्तिष्क निराशा में डूब रहे हैं और लाखों हृदय प्रत्येक मिनट टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। स्वयं दैवी विधान ही हो जाने से विधान से छुटकारा मिलता है, यही शिवोऽहं का अनुभव (साक्षात्कार) है।

जो बाह्य रूपों (आकारों) की नींव पर विश्राम करता और घटनाओं तथा अलंकारों (facts and figures) के भरोसे रहता है, ऐसा मूढ़मति फेन पर घर बनाता है, और स्वयं उसके साथ डूबता है। पर वह व्यक्ति उस अचल शिला (पर्वत) पर अपना स्थान बनाता है, जिसके हृदय की तह में जमा पड़ा है कि "ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या (ब्रह्म सत्य है, पर जगत् मिथ्या है) और दैवी विधान एक जीती-जागती शक्ति है।"

लोग इस शरीर को पैलिसेंबाज, स्वार्थी, गर्व-पूर्ण, मदोन्मत्त अथवा अन्य जो कुछ चाहें आनन्द से कहें; चाहे जिसे लोग अपमानित, पद-दलित और मृतक हुआ कहते हैं, वैसा इसको कह दें, मुझ (सर्व के आत्मा) को इसने क्या ?

में जीवन का विधान (The Law of Life in Death) उसे इतना ही कठोर और ठोस (संसार) सत्य जान पड़ता है, जितना कि प्राचीन ऋषियों को रुद्र। इसकी तनिक उपेक्षा करो कि घायल करनेवाले तीर तुम्हारी नसों और पसली में जा घुसते हैं।

नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवेनमः। बाहुभ्यां उत ते नमः॥

अर्थः—हे रुद्र (अर्थात् दैवी विधान)! प्रणाम है तुम्हारे कोप (रोष) को; प्रणाम है तुम्हारे अमोघ बाणों को; प्रणाम है तुम्हारी अथक बाहुओं को।

हम लोगों के प्रत्येक छोटे-छोटे अनुभव में सारा इतिहास छिपा पड़ा है। हम लोग उसे पढ़ते नहीं। यदि हम उचित मूल्य दें अर्थात् देहाभिमान (local self) को दूर करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर के भीतर से कार्य करने दें, तो बुद्ध भगवान् या हजरत ईसा हो जाना उतना ही सहल है, जितना कि निर्धन पाल (Paul) बने रहना। एक ही कोष (म्यान) में दो तलवार हम नहीं रख सकते। यदि हम लोग बाहर से प्राप्त भये निन्दा-स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जायँ, यदि जीतना व विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि सत्य के उपदेश को अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगायें, यदि हम (अपने कार्यों के बीच) उतना ही न्यून क्षेत्र लेकर कार्य किया करें, जितना कि सूर्य सर्वदा चमकने में लेता है, तो ईश्वरों के भी ईश्वर ! स्वामियों के भी परम स्वामी ! हम हो सकते हैं। जिस क्षण हम लोग अपने विषय में दूसरों की बातों पर विश्वास करना आरम्भ करते हैं, उसी क्षण सब कुछ (कर्म, क्रिया इत्यादि) निरर्थक सत्य हो जाता है। दुनिया नहीं है संसार नहीं है और सांसारिक

जीवित (अमर) बना दिया । परन्तु यह जरूरी नहीं कि उक्त पीड़न और दुःख के अनन्तर सफलता और आनन्द का आगमन ही हो; प्रायः केवल एक दुःख ही विपत्तियों की पंक्ति (ट्रेन) के आने की घोषणा दे देता है, और इसी से कहते हैं कि कोई दुःख अकेले नहीं आता (misfortunes never come singly) । अगर एक ही विपत्ति की चेतावनी से हम शुभ अवस्था में चेत जायं, अर्थात् जग पड़ें, तो जीवन और ज्योति का प्रकाश (उजाला) तत्काल हम पर आ पड़ता है ; किन्तु यदि प्रारम्भिक दुःख की सर्दी हमारे नियम-भंग (विधान-प्रतिकूलता) को और भी बढ़ा दे, तो हम कठोरतर विपत्तियों को बुला लेते हैं । अत्यन्त कठोर, एवं संभवतः गुह्य दैवी विधान के न समझे जाने व पालन होने से यह कलह अवश्य जारी रहता है, और हमारे शिरों पर मुक्के और चोटें खूब बरसाता है । इन चोटों से केवल वेही बच निकलते हैं, जो योग्यता की एकमात्र शर्त "अकथनीय प्रारम्भिक अवस्था ([illegible])" में से खूब गुज़र जाते हैं । किसी समय इंजिनों में नियामक यन्त्र ([illegible]) नहीं हुआ करते थे, और वाष्प का वेग अपने वश के बाहर था । परन्तु अब जब इंजिनों के लिये नियामक यन्त्र निर्मित हो चुके हैं, तब शक्ति का व्यर्थ दुर्व्यय क्यों हो ? इसी प्रकार जीवन-विधान-रूपी नियामक ([illegible]) के पा लेने पर कोई कारण नहीं दीखता कि पीड़ा और कलह पशुओं के समान मनुष्यों पर क्यों राज्य करने पायें ।

इस भौतिक व्यक्तित्व में आसक्त होकर कार्य करना परिच्छिन्न सांसारिक शासनों की दृष्टि में तो कोई पाप नहीं, परन्तु विश्व के सर्वोच्च शासन के सामने यही एकमात्र पाप है, और दूसरे दोष तो इस पाप की विभिन्न शाखायें-मात्र हैं । संसार में

वहाँ सब कारण और नियम हमारे चारों ओर ग्रहों (planets) तथा उपग्रहों (satellities) की भाँति घूमने लग जाते हैं; नहीं-नहीं, वे हमारे निकट इस प्रकार आते हैं, जैसे भोजन के समय बालिका अपनी माता के समीप।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते ॥ (साम वेद)

जिस प्रकार बच्चे को चलना सीखना होता है, ठीक उसी प्रकार सरलता और स्वाभाविकता-पूर्वक मनुष्य को मरना सीखना होता है। इस मृत्यु से अभिप्राय वह अवस्था है कि जहाँ सेवक व्यक्तिगत सेवक नहीं रहता, शिष्य शिष्य नहीं, राजा राजा नहीं, मित्र मित्र नहीं, शत्रु शत्रु नहीं, लोगों के वचन (promises) वचन नहीं, धमकियाँ धमकियाँ नहीं, सामान सामान नहीं, अधिकार अधिकार नहीं रहते, बल्कि जहाँ सब ईश्वर रूप ही हो जाता है। वहाँ केवल एकमात्र सत्य है। जब हृदय इस (सचाई) के साथ स्पन्दित होता वा धड़कता है, तब सारा संसार उस हृदय के साथ स्पन्दित होता वा धड़कता है। जब मन इस (सत्य) से विच्छिन्न होता है (अथवा जब मन इस दैवी विधान के साथ तालबद्ध नहीं होता), अर्थात जब मन बाह्य दृश्य वा नाम-रूपों पर ही आश्रय करता है, तब सारा संसार उस मन से विरुद्ध स्पन्दित वा अनुकम्पित होता है। जब तक हम लोगों में अपने देह की रक्षा करने और अपने व्यक्तित्व की ओर से "शठे शाठ्यम्" वत बदला लेने की भावना जान पड़ती वा महसूस होती है, तब तक समझ लो कि हम मृतक वा गतप्राण हैं। क्लेशकारी व दर्पकारी तथा अपमानकारी शब्दों को बिना ध्यान दिये छोड़ देने की शक्ति से बढ़कर उत्तम प्रमाण (निशानी) मरने का कोई नहीं है।

जब कोई सज्जन वकील के स्थान में जज की कुरसी पर जा बैठता है, तब सारी कचहरी का भाव उसकी ओर हो जाता है,

उत्कृष्ट शिष्टाचार—दैवी विधान

खलील आँ रोज़ बा आतिश हमे गुफ़्त,
अगर मूए-ज़ मन बाक़ीस्त दर सोज़।
बदो मे गुफ़्त आँ आतिश कि ऐ शाह!
बपेशत मन बमीरम तु दर अफ़रोज़॥

भावार्थः अब्राहीम जब जीते जी जलाया जाने लगा, तो उसने अग्निदेवता से प्रार्थना की कि यदि मेरा देह-अभ्यास (व्यक्तिगत अहंकार) बाल बराबर भी इस देह में धसा हुआ हो, तो मेरी निरन्तर यही विनय है कि 'कृपया इसे कदापि न छोड़ो, अवश्य जला डालो।' आग बुझ गई, मानो उसने भक्तिपूर्वक वा सत्कार-पूर्वक यह उत्तर दिया कि 'ऐ मेरे स्वामी! आप जीते रहिये और मुझे आपके चरणों पर मर मिटने दीजिये।"

ऐसा दैवी विधान है। शिष्टाचार में, विनय में, ईश्वर किसी से हारनेवाला नहीं।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवो असन् वशे॥ (यजु० संहिता)
सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृहदारण्यक उप०)
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ (तै० उप०)

अर्थः—आदि में ही सृष्टि-उत्पादक देवों ने ब्रह्म में रुचि रखनेवालों से बोलाः—"हे ब्रह्म से अभिन्न ब्राह्मणो! जो कोई भी इस प्रकार ब्रह्म को जान लेगा, उसकी सेवा में हम देवताओं को आज्ञाकारी अनुचर की भाँति उपस्थित रहना होगा।"

"उसके सिंहासन के आगे भूतमात्र उपहार ला अर्पित ... हैं।

(देहाध्यास) पीछे छोड़ना होगा, और अपने व्यक्तित्व (अहंकार) और मन के साथ उतनी ही सहानुभूति रखनी होगी, जितनी कि किसी अज्ञात पुरुष के प्रति रक्खी जाती है, इससे न किञ्चित् न्यून, न अधिक।"

वर्षों के अपने विचारों और मन्तव्यों (plans and purposes) को छोड़कर यश, कीर्ति एवं चिर-परिचित स्वरों के नाद को त्याग दो; आलिंगन करनेवाली प्यारी भुजाओं के आलिंगन से वियुक्त होकर अपने इस लालन-पालन किये हुए अहंकार को इस प्रकार परे रख दो, जैसे हम अपने दस्तानों को खींचकर उतार देते हैं; रोग-भय को किनारे करके और "लोग हमारे मूल्य को समझेंगे" इस भावना की आशा (hopes of appreciation) को निकाल बाहर कर दो; अपने आपसे अशरीरी बन बाहर हो जाओ; दीर्घ काल से रचित आवरण अर्थात् बाहरी कोष को मूलीवत् छोड़ दो; वैराग्य के द्वार से प्रभुत्व के प्रासाद में प्रवेश करो; ज्ञान के द्वार से मुक्ति के खुले उपवन में आओ; सबका त्याग कर दो; जो कुछ अपना है, उससे मन को निरासक्त कर दो; निर्धन और निःस्वत्व बन जाओ; फिर देखो, तुम सब वस्तुओं के प्रभु और अधिराज हो जाते हो कि नहीं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं (यजु०)

अर्थः—जय (श्री और समृद्धि तुम्हारी दासियाँ हैं। दिन और रात तुम्हारे दक्षिण और वाम भाग (पार्श्व) हैं। नक्षत्रों में शोभा (कान्ति) तुम्हारी दृष्टि (दर्शन) है। स्वर्ग, मर्त्य (पृथ्वी और आकाश) तुम्हारे खुले हुए (अलग-अलग) अधर (ओष्ठ) हैं।" यदि किसी वस्तु को तुम्हें इच्छा करनी है, तो यह इच्छा करो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(देहाध्यास) पीछे छोड़ना होगा, और अपने व्यक्तित्व (अहंकार) और मन के साथ उतनी ही सहानुभूति रखनी होगी, जितनी कि किसी अज्ञात पुरुष के प्रति रक्खी जाती है, इससे न किञ्चित् न्यून, न अधिक।"

वर्षों के अपने विचारों और मन्तव्यों (plans and purposes) को छोड़कर यश, कीर्ति एवं चिर-परिचित स्वरों के नाद को त्याग दो; आलिंगन करनेवाली प्यारी भुजाओं के आलिंगन से वियुक्त होकर अपने इस लालन-पालन किये हुए अहंकार को इस प्रकार परे रख दो, जैसे हम अपने दस्तानों को खींचकर उतार देते हैं; रोग-भय को किनारे करके और "लोग हमारे मूल्य को समझेंगे" इस भावना की आशा (hopes of appreciation) को निकाल बाहर कर दो; अपने आपसे अशरीरी बन बाहर हो जाओ; दीर्घ काल से रचित आवरण अर्थात् बाहरी कोष को भूसीवत् छोड़ दो; वैराग्य के द्वार से प्रभुत्व के प्रासाद में प्रवेश करो; ज्ञान के द्वार से मुक्ति के खुले उपवन में आओ; सबका त्याग कर दो; जो कुछ अपना है, उससे मन को निरासक्त कर दो; निर्धन और निःस्वत्व बन जाओ; फिर देखो, तुम सब वस्तुओं के प्रभु और अधिराज हो जाते हो कि नहीं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणाम् (यजु०)

अर्थ—जय (श्री और [illegible] दिन और रात तुम्हारे दक्षिण और [illegible] में शोभा (कान्ति) तुम्हारी [illegible] मत्य (पृथ्वी और आकाश) तुम्हारे [illegible]) अधर (ओष्ठ) हैं।" यदि किसी [illegible] है, तो यह इच्छा करो।

[illegible]

duties)! तुम हमारा समय ले लेते हो । आराम से भोजन करने का समय भी तो हमें इनसे नहीं मिलता । (इस प्रकार) कर्त्तव्य के नाम आपकी सारी जिन्दगी क्षीण होती जा रही है। परन्तु हमें यह अपने से पूछना चाहिये कि ये कर्त्तव्य (duties) कहाँ से आते हैं ? कौन हम पर यह कर्त्तव्य आ डालता है ? हम स्वयं । वास्तव में आप हो, जो अपने कर्त्तव्य निर्माण कर लेते हो। क्रूर स्वामी के समान इन कर्त्तव्यों को आप पर न आ पड़ना चाहिये । दफ़्तर के काम की देख-भाल करना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं, पर दफ़्तर का काम आप पर कौन डालता है ? आप स्वयं । इस प्रकार यदि आप कर्त्तव्यों के स्वरूप को अन्ततः विचारोगे या देखोगे, तो आपको पता लग जायगा कि आप अपने स्वामी आप हो, और ये सब कर्त्तव्य जो आपको पूर्ण अपना गुलाम (दास) बनाये हुए हैं, आपने स्वयं रचे हैं । यदि एक बार भी आप ऐसा भान वा निश्चय कर लें कि "संसार में कोई पदार्थ नहीं, जो मुझे बाँध सके, प्रत्येक वस्तु वास्तव में मुझसे उत्पन्न होती है," तो आप बड़े सुखी हो सकते हैं, अपनी स्थिति को बड़े मजे से आप ठीक कर सकते हैं।

डॉक्टर जोह्नसन के पास एक मनुष्य आकर बोलाः— "डाक्टर ! डॉक्टर !! मैं नाश हुआ, मैं गया गुज़रा, मैं किसी काम के योग्य नहीं रहा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इस दुनिया में मनुष्य क्या कर सकता है ?" डॉक्टर जोह्नसन ने उससे पूछा कि क्या हुआ, मामला क्या है ? अपनी शिकायत के लिये सबब (कारण) तो बताने चाहिये ? वह मनुष्य इस प्रकार अपनी दलीलें पेश करने लगा — "मनुष्य इस संसार में अधिक से अधिक सौ वर्ष [illegible] और इस अपार व अनन्त काल के सामने भला सौ वर्ष क्या है ? इस पर [illegible]

तिरस्कारा व धिक्कारा नहीं, वह केवल रोने लग पड़ा, और उसके साथ सहानुभूति करते हुए बोला:—"मनुष्यों को आत्मघात कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके पास परमार्थ के लिये कोई समय नहीं। भाई! आपकी इस शिकायत के साथ मुझे एक और शिकायत है, मुझे इससे भी बुरी शिकायत करनी है।" इस मनुष्य ने डॉक्टर जोहनसन से कहा कि आप अपनी शिकायत कहिये। डॉक्टर जोहनसन रोने लगा, दिखावटी रुदन करते हुए बोला—"यह देखो, मेरे लिये कोई ज़मीन वा भूमि नहीं रही, कोई ऐसी भूमि बची नहीं, जो मेरे खाने-भर को अन्न उत्पन्न कर सके, मैं तो गया-गुज़रा और मरा।" वह (आदमी) बोला—"अजी डॉक्टर साहब! यह हो कैसे सकता है? मैंने माना कि आप बहुत अधिक खाते हैं, दस मनुष्यों जितना खाते हैं, फिर भी इस पृथ्वी पर इतनी भूमि है कि जो आपके उदर के लिये अन्न उपजा सके आपके शरीर के लिये अन्न या शाक (तरकारी) उत्पन्न करने को काफ़ी भूमि है। आप शिकायत क्यों करते हैं?" डॉक्टर जोहनसन ने उत्तर दिया:—"अरे देखो तो, आपकी यह पृथ्वी ही क्या चीज़ है? यह भूमि कुछ चीज़ नहीं। ज्योतिर्गणित में यह पृथिवी एक बिन्दु-मात्र मानी जाती है। जब हम तारों और सूर्यों के अन्तर का हिसाब लगाने बैठते हैं, तो इस पृथिवी को कुछ भी नहीं अर्थात् शून्यवत् मानते हैं; फिर इस शून्य रूप पृथिवी की तीन चौथाई तो जल से परिपूर्ण है, और इस पर बचना ही क्या है? उसका एक बहुत बड़ा भाग तो ऊसर बालू से भरा पड़ा है, एक बड़ा भाग ऊसर पर्वतों और पत्थरों ने ले रक्खा है, एक बड़ा भाग तो झील और नदियों ने दबा रक्खा है, फिर इस भाग का बहुत सा भाग लन्दन जैसे बड़े-बड़े नगरों से घिरा पड़ा है, उस पर लड़के, रेल वाले, कुछ इस पृथिवी का एक बहुत बड़ा भाग ले लेते हैं।

मानना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। हम आपका कहना कर नहीं सकते। यदि आप पानी चाहते हैं, यदि आप अपने घोड़े को पानी पिलाना चाहते हैं, तो शब्द के होते हुए ही आप अपने घोड़े को पानी पीने को पुचकारिये, क्योंकि जब हम शब्द बन्द करते हैं, तो पानी भी वहीं रुक जाता है, अर्थात् पानी भी प्राप्त होने से रह जाता है, पानी तो निश्चय इस शब्द के साथ-साथ ही आता है।" इसी प्रकार राम कहता है कि अगर आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो सर्व प्रकार के शब्दों (कोलाहल) के बीच में, भाँति-भाँति के कष्टों (झंझटों) के बीच में ही उसे कीजिये। इस जगत में आप कभी ऐसी स्थिति में अपने को नहीं पा सकते, जहाँ बाहर से कोई शब्द (खटखट) या दुःख-झंझट न हो। चाहे आप हिमालय के शिखरों पर जाकर रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। चाहे आप अशिष्ट (जंगली) पुरुषों के समान रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। जहाँ जी चाहे आप जायँ, दुःख-झंझट आपको नहीं छोड़ेंगे, ये आपका पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे, ये सदा आपके साथ होंगे। यदि आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो जब आपके इर्द-गिर्द झंझट-रूपी रहट का शब्द खूब जारी हो रहा हो, तभी उसे करिये। जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब के सब अपमानकारी (वा तुच्छ निराशा-जनक) परिस्थिति और दशा के होते हुए ही हुए हैं; वास्तव में जितनी अधिक कष्ट भरी दशा होती है और जितनी अधिक कठिन (वा कष्ट-साध्य) परिस्थिति होती है, उतने ही प्रबल मनुष्य और उतने ही अधिक बलवान लोग हो जाते हैं, जो उन अव[illegible] से निकलते हैं। अतः इन बाह्य दुःखों

रहने लगोगे, अर्थात् जब वेदान्त आपके आचरण में आ जावेगा, तो आप देखोगे कि ये अड़ोस-पड़ोस और अवस्थायें आपसे हार मानेंगी, आपके आगे सिर झुकायेंगी, आपके अधीन हो जायँगी, और आप उनके स्वामी बन जाओगे। क्या यह समाज है, जो हमें नीचे गिराता है? क्या यह दुनिया है, जो हमें नीचे दबाए रखती है? नहीं, आप तो इस दुनिया में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी ही रचित क्षुद्र दुनिया में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं, जो इस संसार में रहते हैं? इस विशाल संसार में बहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनिया में रहते हैं। आप लोगों ने अपनी-अपनी क्षुद्र व्यक्ति के चारों ओर अपनी-अपनी दुनिया बना ली है। कितने ऐसे लोग हैं, जो छोटे से घरेलू वृत्त से परे कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जो अपनी जाति की सृष्टि के बाहर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जिनको अपने पति-पत्नी या बाल-बच्चों की रचित छोटी सृष्टि के बाहर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये इन छोटी सी तुच्छ दुनियाओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल (विस्तृत) सृष्टि तो आपको नीचे नहीं दबाए रखती; ये आपकी अपनी ही रचित छोटी-छोटी सृष्टियाँ हैं, जो आपको नीचे दबाए रखती हैं; यदि आप इस (छोटी सृष्टि) से ऊपर उठ सकें, तो सारी दुनिया आपके अधीन हो जायगी आपके आगे हार मान लेगी।

वस्तुतः कर्म क्या है, इसको विचारने से हमारे निज निर्मित क्षुद्र संसार का उदाहरण मिल जायगा। आप कहते हैं कि हम अति प्रवृत्त रहते हैं, और राम ने इस देश में लोगों को समयाभाव की शिकायत करते देखा है, यद्यपि राम को यह देखकर हँसी मालूम हो रही है कि लोग अपनी सारी जिन्दगी तो समय का

मानना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। हम आपका कहना कर नहीं सकते। यदि आप पानी चाहते हैं, यदि आप अपने घोड़े को पानी पिलाया चाहते हैं, तो शब्द के होते हुए ही आप अपने घोड़े को पानी पीने को पुचकारिये, क्योंकि जब हम शब्द बन्द करते हैं, तो पानी भी वहीं रुक जाता है, अर्थात् पानी भी प्राप्त होने से रह जाता है, पानी तो नित्य इस शब्द के साथ-साथ ही आता है।" इसी प्रकार राम कहता है कि अगर आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो सर्व प्रकार के शब्दों (कोलाहल) के बीच में, भाँति-भाँति के कष्टों (झंझटों) के बीच में ही उसे कीजिये। इस जगत् में आप कभी ऐसी स्थिति में अपने को नहीं पा सकते, जहाँ बाहर से कोई शब्द (खटखट) या दुःख-झंझट न हों। चाहे आप हिमालय के शिखरों पर जाकर रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। चाहे आप अशिष्ट (जंगली) पुरुषों के समान रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। जहाँ जी चाहे आप जायँ, दुःख-झंझट आपको नहीं छोड़ेंगे, ये आपका पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे, ये सदा आपके साथ होंगे। यदि आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो जब आपके इर्द-गिर्द झंझट-रूपी खट का शब्द खूब जारी हो रहा हो, तभी उसे करिये। जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब के सब अपमानकारी (वा तुच्छ निराशा-जनक) परिस्थिति और दशा के होते हुए ही हुए हैं। वास्तव में जितनी अधिक कष्ट भरी दशा होती है और जितनी अधिक कठिन (वा कष्ट-साध्य) परिस्थिति होती है, उतने ही प्रबल मनुष्य और उतने ही अधिक बलवान् लोग हो जाते हैं जो उन अवस्थाओं में से निकलते हैं। अतः इन बाह्य दुःखों [illegible]ओं को आनन्द से आने दो। ऐसे अड़ोस-पड़ोस में [illegible] को व्यवहार में लाओ। और जब वेदान्त-तत्त्व में

रहने लगोगे, अर्थात् जब वेदान्त आपके आचरण में आ जावेगा, तो आप देखोगे कि ये अड़ोस-पड़ोस और अवस्थायें आपसे हार मानेंगी, आपके आगे सिर झुकायेंगी, आपके अधीन हो जायँगी, और आप उनके स्वामी बन जाओगे। क्या यह समाज है, जो हमें नीचे गिराता है? क्या यह दुनिया है, जो हमें नीचे दबाए रखती है? नहीं, आप तो इस दुनिया में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी ही रचित क्षुद्र दुनिया में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं, जो इस संसार में रहते हैं? इस विशाल संसार में बहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनिया में रहते हैं। आप लोगों ने अपनी-अपनी क्षुद्र व्यक्ति के चारों ओर अपनी-अपनी दुनिया बना ली है। कितने ऐसे लोग हैं, जो छोटे से घरेलू वृत्त से परे कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जो अपनी जाति की सृष्टि के बाहर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जिनको अपने पति-पत्नी या बाल-बच्चों की रचित छोटी सृष्टि के बाहर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये इन छोटी सी तुच्छ दुनियाओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल (विस्तृत) सृष्टि तो आपको नीचे नहीं दबाए रखती; ये आपकी अपनी ही रचित छोटी-छोटी सृष्टियाँ हैं, जो आपको नीचे दबाए रखती हैं; यदि आप इस (छोटी सृष्टि) से ऊपर उठ सकें, तो सारी दुनिया आपके अधीन हो जायगी आपके आगे हार मान लेगी।

वस्तुतः कर्म क्या है, इसको विचारने से हमारे निज निर्मित क्षुद्र संसार का उदाहरण मिल जायगा। आप कहते हैं कि हम अति प्रवृत्त रहते हैं, और राम ने इस देश में लोगों को समयाभाव की शिकायत करते देखा है, यद्यपि राम को यह देखकर हँसी मालूम हो रही है कि लोग अपनी सारी जिन्दगी तो समय का

एक पुराना अभ्यासवृद्ध योद्धा था, जो सैनिक शिक्षा और क़वायद में इतना अभ्यस्त था कि ड्रिल (क़वायद) की क्रियाएँ उसके लिये स्वाभाविक हो गई थीं, अर्थात् वह क़वायद की क्रियाएँ यन्त्रवत् किया करता था। दूध का भारी मटका या कुछ और खाद्य वस्तुएँ हाथ में लिये यह (योद्धा) बाज़ार में जा रहा था। वह अपने हाथों में या कन्धों पर भारी घड़ा (दूध का) ले जा रहा था। वहाँ बाज़ार में एक पक्का मसख़रा आ पहुँचा। उसने चाहा कि यह सब दूध या अन्य स्वादिष्ठ खाद्य पदार्थ (उसके हाथ वा कंधे पर से) नाली (मोरी) में गिर जायँ। अतः वह मनुष्य एक किनारे खड़ा हो गया, और वहीं बोल उठा "अटेनशन! अटेनशन!! attention, attention सावधान हो! सावधान हो!!)।" आपको मालूम है कि जब हम अटेनशन (attention) कहते हैं, तो हाथों को नीचे गिर जाना चाहिये। इस अभ्यासवृद्ध योद्धा ने ज्यों ही कि वह शब्द 'अटेनशन' सुना, त्यों ही उसके हाथ स्वतः नीचे गिर गये, और सब दूध या अन्य वस्तुएँ, जो उसके पास थीं, नाली में गिर गईं। बाज़ार में सभी राही और दुकानदार इससे पेट भर हँसे। आप देखते हैं कि जब उसने अटेनशन (सावधान) का शब्द सुना, तत्काल उसने हाथ नीचे गिरा दिये। परन्तु अध्यात्म-शास्त्र के कथनानुसार उसने कुछ काम नहीं किया, ऐसा कर्म तो स्वाभाविक कर्म (reflex action) कहलाता है। स्वाभाविक कर्म कोई कर्म नहीं है, क्योंकि मन उसमें नहीं लगा होता।

अब राम आपसे केवल पूछता है कि 'कृपा करके बताइये, आप चौबीस घंटे में कितना 'काम' करते हैं?" जब आप खाना खाते हैं, तो क्या यह 'कर्म' है? नहीं। जब आप और बीसियों काम करते हैं, तो जिस अर्थ में अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा करता है, आप उसी अर्थ में क्या 'कर्म' करते हैं? जब आप

खून करते (वक़ काटते) फिरते हैं, और तिस पर समयाभाव की शिकायत करते हैं। उन्हें वक़्त तो इतना काफ़ी मिलता है कि उनके सिर-भुजा पर वह भारू हो जाता है, और फिर भी वे कहते हैं—"हमारे पास समय नहीं।" आप अपने संकल्पों से समय खो रहे हैं, आप समय नष्ट कर रहे हैं, और फिर भी कहते हैं कि "समय नहीं है।" यह कैसी बात है ? कर्म के रूप के विषय में जो भ्रम आपको हो रहा है, वही आपकी शिकायत का कारण है। आप 'कर्म' उसको कहते हो, जो वास्तव में 'कर्म' नहीं है। भिन्न-भिन्न लोग कर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषा करते हैं। विज्ञान या यन्त्र-विद्या (Mechanics) के लेखक कर्म की एक प्रकार परिभाषा करते हैं, और हम लोग दूसरी प्रकार। उनके मतानुसार आप यदि सम धरातल (मैदान) पर चल रहे हों, तो कोई कर्म (वास्तव में) नहीं कर रहे; अथवा गेंद यदि चिकनी (साफ़) समतल भूमि पर लुढ़क रहा हो, तो वह (वास्तव में) कोई कर्म नहीं कर रहा है। आप जभी कर्म करते हो, जब चढ़ाई पर ऊपर चढ़ते हो; जब आप सम धरातल पर चलते हो, तब कोई कर्म (वास्तव में) नहीं करते हो, यह विचित्र ढंग कर्म की परिभाषा करने का है। अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा दूसरी रीति से करता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप तभी कर्म करते होते हो, जब आपका मन उस कर्म में प्रवृत्त है; पर यदि आप कोई कर्म (हाथ से तो) कर रहे हो और आपका मन उसमें लगा नहीं है, तो आप वास्तव में कर्म नहीं कर रहे। आप श्वास लेते हो, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रानुसार श्वास लेना कोई कर्म नहीं है; खून आपकी नाड़ियों में बह रहा है, यह एक हिसाब से तो कर्म है, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रज्ञों के मतानुसार यह कर्म नहीं। अध्यात्म-शास्त्रवेत्ता "कर्म वास्तव में क्या है" इसके दिखलाने के लिये एक बड़े मार्के का उदाहरण देते हैं: —

एक पुराना अभ्यासवृद्ध योद्धा था, जो सैनिक शिक्षा और कवायद में इतना अभ्यस्त था कि ड्रिल (कवायद) की क्रियाएँ उसके लिये स्वाभाविक हो गई थीं, अर्थात् वह कवायद की क्रियाएँ यन्त्रवत् किया करता था। दूध का भारी मटका या कुछ और खाद्य वस्तुएँ हाथ में लिये वह (योद्धा) बाजार में जा रहा था। वह अपने हाथों में या कन्धों पर भारी घड़ा (दूध का) ले जा रहा था। वहाँ बाजार में एक पक्का मसखरा आ पहुँचा। उसने चाहा कि वह सब दूध या अन्य स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ (उसके हाथ वा कंधे पर से) नाली (मोरी) में गिर जायँ। अतः वह मनुष्य एक किनारे खड़ा हो गया, और वहीं बोल उठा "अटेनशन! अटेनशन!! (attention, attention सावधान हो! सावधान हो!!)।" आपको मालूम है कि जब हम अटेनशन (attention) कहते हैं, तो हाथों को नीचे गिर जाना चाहिये। इस अभ्यासवृद्ध योद्धा ने ज्यों ही कि वह शब्द 'अटेनशन' सुना, त्यों ही उसके हाथ स्वतः नीचे गिर गये, और सब दूध या अन्य वस्तुएं, जो उसके पास थीं, नाली में गिर गईं। बाजार में सभी लोग और दुकानदार इससे पेट भर हँसे। आप देखते हैं कि जब उसने अटेनशन (सावधान) का शब्द सुना, तत्काल उसने हाथ नीचे गिरा दिये। परन्तु अध्यात्म-शास्त्र के कथनानुसार उसने कुछ काम नहीं किया, ऐसा कर्म तो स्वाभाविक कर्म कहलाता है। स्वाभाविक कर्म कोई कर्म नहीं है, क्योंकि मन उसमें नहीं लगा होता।

अब राम आपसे केवल पूछता है कि "कृपा करके बताइये, आप चौबीस घंटे में कितना 'काम' करते हैं?" जब आप खाना खाते हैं, तो क्या यह 'कर्म' है? नहीं। जब आप और बीसियों काम करते हैं, तो जिस अर्थ में अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा करता है, आप उसी अर्थ में क्या 'कर्म' करते हैं? जब अ

उसे नहीं करते होते। अक्सर जब आपका तन तो गिरजाघर में होता है, जब आप (मुँह से तो) प्रार्थना करते होते हैं, जब आप (कानों से तो) व्याख्यान सुनते होते हैं, पर (वास्तव में) न आप व्याख्यान सुनते हैं, न प्रार्थना करते हैं और न गिरजे में ही रहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि आप शरीर से तो बाजार में हैं, आप शरीर से तो टहल रहे हैं, पर (चित्त से) वास्तव में आप ईश्वर से युक्त हो रहे हैं। आपका मन ईश्वर के साथ होता है। अक्सर ऐसा हुआ है कि जो लोग दुष्कर्म और पाप (अपराधों) के अपराधी ठहराये गये, वे वास्तव में धार्मिक (ईश्वर-भक्त) और पवित्रात्मा थे, उनका मन ईश्वर से तन्मय था। अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग पवित्रात्मा और शुद्ध (साधु) समझे जाते हैं, उनके मन मलीन होते हैं। अक्सर हम दुष्टों की उन्नति होते देखते हैं। वेदान्त कहता है कि उन लोगों की यह दुष्टता नहीं है जो उनकी उन्नति वा वृद्धि कराती है, किन्तु वे चित्त से ईश्वर में वास किये होते हैं। इसलिये लोगों के केवल बाह्य कर्मों से आप कोई परिणाम मत निकालें। यदि कोई मनुष्य चोरी वा खून करता है, तो उसे आपको घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।

राम अब आपको भारतवर्ष के एक बड़े नामी चोर की अपने मुख से कही कहानी सुनाता है। राम उस समय निरा बच्चा था, और उसने उस नामी चोर को अपने मित्रों से यह कहानी कहते सुना था, किन्तु राम उस मौके पर वहाँ स्वयं मौजूद था, राम उस समय अपने ग्राम के जंगल में था, वह तब बहुत छोटा सा था। छोटे लड़के को कुछ न समझकर चोर इस छोटे बालक की मौजूदगी में (अपने मित्र से कहने में) न छिपाया, और खुले दिल से सारी कहानी कह डाली।

इस कहानी से आप पर इस सारे विषय का रहस्य खुल जायगा। जिस प्रकार एक बार वह धनिक के घर में घुसा और वहाँ से जवाहिरात चुराकर भागा था, उसे उस चोर ने वर्णन किया। चोर ने कहा कि "जो जवाहिरात उस धनिक ने हाल ही में लाकर अपने घर में रक्खे थे, उसका किसी प्रकार से मुझको पता लग गया। उसके घर में मैं घुसने को तो चला, किन्तु इसका कोई उपाय वा तरीक़ा न सूझ पड़ा। बार-बार सोचने पर मैंने राह निकाल ली। मैंने देखा कि घर के पास ही एक बड़ा भारी वृक्ष है, और वह वृक्ष घर की तीसरी मंज़िल की खिड़की के ठीक सामने है, तब मैंने रात को अँधेरे के समय उस पेड़ पर एक झूला डालने की युक्ति सोची, उस पेड़ की चोटी पर एक रस्सा डाला, और एक प्रकार का झूला बना लिया, और उस झूले पर मैं झूलने लगा, इस प्रकार उस गरम देश में मैं कुछ काल तक लगातार झूलता गया। गरमी की ऋतु थी, और यह मुझे मालूम था कि घर के लोग पाँचवीं छत पर सोये हुए हैं, वे तीसरी छत पर नहीं हैं। जब झूला (झूलते-झूलते) खिड़की के पास पहुँचा, तो मैंने चटाक एक लात मारी, फिर दूसरी लात मारी, और तीसरी लात पर खिड़की के किवाड़ फट से खुल गये। इस प्रकार सातवें, आठवें प्रयत्न के बाद जब खिड़की के किवाड़ खुलकर पीछे हट गये, तब मैं घर में जा घुसा। मेरे पास वहाँ कुछ रस्से थे, मैंने उन रस्सों को नीचे लटकाकर अपने दो या तीन साथियों को ऊपर खींच लिया। तब मैं अपने चित्त में सोचने लगा कि कहाँ जवाहिरात के मिलने की संभावना हो सकती है। मैंने मन को एकाग्र किया। उस एकाग्रता में मेरा मन नितान्त निमग्न हो गया। उस समय मैंने मन में कहा कि लोग अपने जवाहिरात ऐसी जगह पर नहीं रखते, जहाँ चोरों को उसके मिल ज[illegible] सम्भावना हो सके। लोग जवाहिरात

ऐसे स्थान पर रखते हैं, जहाँ से दूसरों को उन्हें पा सकने की किञ्चित् सम्भावना न हो सके। वहाँ मैं एक ऐसी जगह खोदने लगा, जहाँ उनके पा लेने की किञ्चित् संभावना थी। जवाहिरात जमीन में गड़े थे। उन दिनों भारतवर्ष में यही तरीका था और कुछ लोग आजकल भी वहाँ ऐसा ही करते हैं, परंतु अब बहुत अपने रुपये को बंकों में रखने लग पड़े हैं। लोग अपने धन को भूमि में गाड़े रखते थे। मैंने वह द्रव्य पा लिया और तब मैंने सीढ़ियों से एक आवाज़ सुनी।" उस समय अपने मन की हालत का वर्णन जो चोर ने किया, वह राम भूल नहीं सकता। चोर ने कहा कि "जब मैं और मेरे साथियों ने धन पाते ही आवाज़ सुनी, तो उस आवाज़ ने हमारे शरीर में एक कँपकँपी सी डाल दी। हम लोगों की सारी देह काँपती, थरथराती, भयभीत होती चूर-चूर हुई जाती थी: हम लोग सिर से पैर तक थरथरा रहे थे। तब मैंने कहा कि (जान पड़ता है) शायद यह मृत्यु की घड़ी है। हमने अपने आपको मृतवत् पाया, और उस समय हम कह रहे थे कि अब एक नन्हा सा मूसा आकर भी हमारा खातमा कर सकता है।" वह आवाज़ वास्तव में केवल मूसों की आवाज़ थी। तब चोर ने कहा कि "मैं उस समय पछताया, ईश्वर से प्रार्थना की, और अपने शरीर का ध्यान छोड़ ईश्वर के आगे नितान्त आत्म-समर्पण कर दिया। तब मैंने आत्म-समर्पण किया, पश्चात्ताप कर ईश्वर से क्षमा-प्रार्थना की, और उस समय मैं समाधि-अवस्था में था, जहाँ मन मन नहीं था, जहाँ सब स्वार्थ दूर हो गये थे। उस समय मैं और मेरे साथी एक अति विचित्र और बहुत आश्चर्य-जनक मानसिक स्थिति में थे। उस समय मैंने प्रार्थना की कि हे भगवान! मेरी रक्षा करो, मैं योगी हो जाऊँगा, मैं संन्यास ले लूँगा, मैं साधु बन जाऊँगा, मैं अपना सारा जीवन

आपकी सेवा में अर्पण कर देना। हे प्रभो! मुझे बचाओ। मेरी रक्षा करो!' यह वही हृदय की उत्सुकता-पूर्ण मार्मिक प्रार्थना थी बड़ी ही सच्ची विनय थी, जो मेरे हृदय को तह और अन्त करण से निकल रही थी। वह प्रार्थना मेरे सारे तन के भीत से वा रोम-रोम के भीतर से गूँज रही थी, मैं उस समय ईश्वर ध्यान में निमग्न था, फल क्या हुआ? सब आवाज ठण्डी प गई, अर्थात् सब शब्द बन्द हो गया, और मैं और मेरे साथी घ से साफ बाहिर निकल आये, और घर से सकुशल बाहिर आ गये।" अब ध्यान दीजिये, बाह्य कर्मों से ही किसी के विषय विचार मत स्थिर कीजियेः मनुष्य वह नहीं है, जो उसके बा कर्म हैं, मनुष्य वह है, जो उसके भीतर विचार हैं। यह सम्भ है कि वेश्या के घर में रहनेवाला मनुष्य भी भीतर से सा हो। हम जानते हैं कि भगवान बुद्ध एक वेश्या के घर में र थे, किन्तु वे निष्पाप थे। हम जानते हैं कि हजरत ईस मेरीमैग्डलेन के घर रहे थे, जिस स्त्री को लोग पत्थर से मार जा रहे थे, किन्तु हजरत ईसा ईश्वर थे। हमें मालूम है कि भारत में भी क्राइस्ट के समान लोक-उद्धारक बहुत से हुए हैं, निन्दित जनों के साथ रहे थेः पर वास्तव में वे ईश्वर-स्वरू थे। आदमी को उसकी संगत से मत जानियेः किसी मनुष पर केवल उसके कर्मों से ही अपना निर्णय मत दीजिये। किस पर अपना विचार स्थिर (शीघ्र) मत करें। मनुष्य वह है, उ उसके विचार हैं। अक्सर जेल में रहनेवाले लोग स्वर्ग रहते हैं। बनियन (Banyan) ने जेल में ही अपनी पुस्त (Pilgrim of Progress) लिखीः मिल्टन (milton) ज जेल में था और अन्धा हो गया था, तब उसकी महती रच निकलीः डेनीयल डी फो (Daniel De Foe) ने जेल में रॉबिन्सन क्रूसो (Robinson Crusoe) लिखाः सर

रेली (Sir Walter Raleigh) ने जेल में ही अपने संसार के इतिहास (The History of the World) की रचना की। हम चाहते हैं कि हमारा अड़ोस-पड़ोस अमुक-अमुक प्रकार का हो, पर हम रहते वहाँ हैं, जहाँ हमारे ख्याल रहते हैं। अब हम मृत्यु अर्थात् जीवन में मृत्यु की कथा की व्याख्या करते हैं। ध्यान से सुनिये। राम कहता है कि आपको सफलता आपकी सबसे अभेदता का फल-स्वरूप प्राप्त होती है। सफलता सदा आपके सद्गुणों का फल है, परमात्मा में लीन और निमग्न होने का परिणाम है। यही बराबर होता है। चोर भी जब उस अवस्था को प्राप्त हुआ, तो सफल हुआ। (इस प्रकार) आप लोग भी सफल होंगे। उस चोर की सफलता उसकी वास्तविक, सच्ची और हार्दिक विनय-सम्पन्न स्थिति (वृत्ति) का परिणाम थी, जिस स्थिति में कि वह उस समय था। परमात्मदेव वा सर्वरूप में लीन व निमग्न होने से उसने जान लिया था कि धन कहाँ है। चोर सफल हुआ। पर चोर की सफलता भी वेदान्त को व्यवहार में लाने के कारण से हुई। इससे प्रत्येक मनुष्य की सफलता सदा उसी कारण से होती है। हम लोग देखते हैं कि वह चोर था, उसने चोरी की, जो बहुत बुरा था, क्योंकि दूसरों को लूटना पाप है, दूसरों को लूटना निःसन्देह समय पर उसे दण्ड देगा, उसके ऊपर आफत लायगा; और जो धन कि वह चोरी से पाता है, और जो पाप कर्म कि वह करता है, जो आध्यात्मिक समता (harmony) कि वह तोड़ता है, वह सब के सब अवश्य उस नाश करेंगे; परन्तु हम देखते हैं कि चोर की भी सफलता रूप के साथ एकता और अभेदता तथा परमात्मदेव में उस लीनता का ही परिणाम है, अर्थात अपने शरीर-भाव के त्यागने का, क्षण भर के लिये शरीर से ऊपर उठने का,

हथेली पर पेंसिल सीधी खड़ी की), यह कभी नहीं ठहरेगी (खड़ी रहेगी), एक आध पल यह शायद ठहरी रहे (खड़ी रह जाय), नहीं तो पवन का हरएक झकोरा इसको नीचे गिरा देगा। इसे अस्थिर-स्थिति कहते हैं। पेंसिल को उस प्रकार रक्खो (यहाँ पर स्वामीजी ने पेंसिल को अपनी अंगुलियों के बीच पकड़ा और पैंडूलम (Pendulum) के समान लटकाए रक्खा), यह ठहरी हुई वा स्थिर है; किंतु पैंडूलम (लटकती हुई) होने के कारण यह कुछ काल तक हिलती रहेगी, फिर कुछ काल के बाद ठहर जायगी। स्थिरता चाहे भंग हो जाय, किन्तु पुनः स्थिरता प्राप्त हो सकती है। पर उस पूर्व दशा में स्थिरता पुनः प्राप्त हो नहीं सकती। किन्तु इसके सिवा तीसरी स्थिति एक और होती है। पेंसिल को इस प्रकार रक्खो (यहाँ स्वामीजी ने पेंसिल को मेज पर रख दिया), यह स्थिर है। इसे उस प्रकार से (टेबल पर) रक्खो, यह स्थिर है। यहाँ (टेबल पर) जहाँ कहीं तुम पेंसिल को रक्खो, यह स्थिर है। यह सदा स्थिरता की दशा में है। ठीक ऐसे ही कुछ लोग हैं, जिनके चित्त लगातार क्षुभित और हर वक्त विक्षिप्त हैं, वे कभी स्थिर नहीं हो सकते, कभी स्थिर दशा में नहीं रह सकते। बाह्य स्थिति उनको स्थिर कर देती है, वे पुनः विक्षिप्त (अस्थिर) हो जाते हैं। कुछ और लोग हैं, जिनके चित्त प्रायः शान्त, स्थिर (एकाग्र वा ध्यानावस्थित) और निश्चल रहते हैं, पर एक बार विक्षिप्त होने पर घंटों बहुत देर तक क्षुभित वा भ्रमित रहते हैं। और इस जगत में बहुत से लोग इसी स्वभाव के हैं। आप बाजार में टहल रहे हैं, कोई आदमी आता है, आपसे हाथ मिलाता है, अथवा राम राम करता है, और कुछ ऐसे वचन कह जाता है, जो सुखमय प्रिय नहीं हैं, किन्तु कटाक्ष और निन्दा भरे हैं। वह तो चला जाता है, किन्तु अपना काम कर जाता है, और तमाक

पास करके चल बनता है। उस विक्षेप का प्रभाव घंटों रहता है, बल्कि कभी-कभी तो दिनों, हफ्तों, महीनों और वर्षों तक बना रहता है। उस रिमार्क (वचन) का असर बना रहता है, और मन डाँवाडोल भ्रमित रहता है. एक बार विक्षिप्त होने पर बराबर हिले जाता और इधर-उधर भटकता फिरता है, और मन की यह अवस्था, मन की यह डाँवाडोल स्थिति आपका जीवन नष्ट कर देती है, और आपका सारा समय हर लेती है। अब जरा ध्यान दीजिये, कामों या बातों ने तो बहुत समय न लिया, कर्म तो प्रथम क्रिया वा चेष्टा थी, जो मन को दी गई, किन्तु उसके उत्तर-फल, या यों कहो कि आपके अपने मन की डाँवाडोल स्थिति ही आपके जीवन को हर लेती है। यदि आप मन की ये विचित्र चंचलता रोक सको, यदि आप भीतर के विक्षेप पर विजय पा सको, यदि आप मन की लगातार भ्रान्ति, स्फुरण वा धड़कन और संशय विपर्य्यय को वश में कर सको, वा उनका नाश कर सको, यदि आप इस मन को

परिस्थिति से विक्षिप्त नहीं होते, चाहे कोई ही बात उनके सामने हो, वे शान्त और निश्चल रहते हैं; चाहे घूमते हुए सागर की उछलती हुई लहरों (तरंगों) में उन्हें रख दो, वे वैसे के वैसे रहेंगे; चाहे उन्हें युद्ध में रख दो, तब भी वैसे के वैसे ही रहेंगे। आप उनके मित्र हैं, आज उनसे आप बातचीत करें, और उन्हें सर्व प्रकार की बातें कह डालें (अर्थात् कटाक्ष वा उपालंभ लगा लें), वे उनका प्रत्युत्तर नहीं देंगे। जिस क्षण आप उनसे अलग होते हैं, उनका चित्त पूर्ववत् वैसा का वैसा ही शुद्ध, पवित्र और हरा-भरा है। एक निरासक्त वा मुक्त पुरुष के साथ आप हज़ारों वर्ष रहें और चले जायँ, इससे आप उनके चित्त में किञ्चित् विक्षेप न डाल सकेंगे। वे ठीक दर्पणवत् होते हैं, जैसे दर्पण आपका मुखड़ा आपको वापिस दिखलाता है। आप जानते हैं कि दर्पण आपके मुख का ठीक-ठीक चित्र तो नहीं खींचता। यदि कुंडल आप के बायें कान में है, तो दर्पण में दायीं ओर के कान में आप पाएँगे। इसी प्रकार दायाँ बायाँ हो जाता है, बायाँ दायाँ ...ता है। आप सैकड़ों वर्ष दर्पण के सामने रहें, दर्पण सैकड़ों वर्ष तक आपको वैसा ही दर्शाता रहेगा। दर्पण को अलग कर दें, दर्पण तब भी वैसा का वैसा ही है; ऐसा ही ज्ञानवान मुक्त पुरुष का हाल है। वह ऐसा है, जिस पर बाहिर के दृश्य अपना चिह्न नहीं छोड़ सकते (अर्थात् उसे दूषित नहीं ...ते), जिसको कोई भी दूषित वा कलङ्कित नहीं कर ...और जो नित्य स्वतंत्र वा असंग रहता है। आप आयें ...सारा समय उसकी स्तुति करके चले जायँ, तो ...पीछे उसका चित्त उस स्तुति की जुगाली नहीं ...। (अर्थात् चित्त उस स्तुति को पुनः-पुनः ध्यान में ...फूलता नहीं रहेगा)। आप आयें और चाहे गुणदोष

विवेचक दृष्टि से और चाहे छिद्रान्वेषी वा कुटिल दृष्टि से उस पर दोष लगा जायँ; आपके चले जाने के बाद वह आप के इस दोष-निरूपण वा छिद्रान्वेषण को बार-बार ध्यान में नहीं लावेगा। असंग, निःसंग हुआ वह अपने आत्मा में निश्चय रखता है।

अब राम कहता है कि यदि आप वेदान्त को ठीक-ठीक पढ़ें और उसकी शिक्षा को नित्य अपने सम्मुख रक्खें, प्रणव या अन्य कुछ चिह्नों द्वारा अपने भीतर के बोध के साथ, अपने भीतरी विचारों से ठीक और में लग कर आप अपने ईश्वरत्व का ध्यान करें, और नित्य अपने सत्य स्वरूप को सम्मुख रक्खें, तो आपका चित्त यदि वह शुरू से अस्थिर वा चंचल स्वभाव (unstable equilibrium) है, तो स्थिर स्वभाव (stable equilibrium) हो जायगा, और यदि वह (शुरू से) स्थिर व एकाग्र स्वभाव है, तो वह दर्जे व दर्जे समता (neutral equilibrium) को प्राप्त कर लेगा; और यह वेदान्त, यह सचाई आपको हरदम अपने सम्मुख रखनी होगी। इस अवस्था मे नित्य रहने के लिये राम अब आपको कुछ बाहिर के साधन व सहकारी उपाय बताता है। इसे आजमाओ और आप देखेंगे कि यद्यपि लोग इसका उपदेश नहीं करते, तथापि यह है एक विचित्र उपदेश। आप यह देखते कि जब लोग राम के पास आकर बातचीत करते हैं, कई समय उसमें से छिद्रान्वेषण, कुटिल और दोष-दृष्टि से छिद्रान्वेषण करके चले जाते हैं आप जानते हैं, राम कैसे अपने आपको उनके विचारों वा उपदेशों से बचाये रखता है? इसके नाना साधन हैं एक साधन यह है कि आप यह कोरा पुस्तक जो अपने सामने देखते हैं, यह एक अद्भुत पुस्तक है, पुस्तक एक ऐसे मनुष्य द्वारा लिखा गई है, जिसकी बराबरी का मिलता नहीं है। यह मनुष्य प्रसिद्ध नहीं है। यह

भारतवर्ष में पूजा नहीं जाता। यह पुस्तक* श्रीमद्भगवद्गीता के समान प्रसिद्ध नहीं है, यह श्रीभगवान कृष्ण से नहीं लिखी गई। यह उस मनुष्य से लिखी गई, जो नाम और कीर्ति से अपरिचित था। किन्तु यह एक मनुष्य है, जो आपको समस्त क्राइस्ट्स, कृष्ण, बुद्ध, सारे के सारे दे देता है। राम इस पुस्तक को लेता है, आप जानते हैं, यह संस्कृत में है, और जब इस पुस्तक में से एक पद राम पढ़ता है, तो जन्माजन्म के कलंक को तथा समस्त हृदय-तल को धोने और साफ करने में यह काफी होता है। यह तत्क्षण राम को हर्षोन्माद (ecstasy, अत्यन्तानन्द) की अवस्था में डाल देता है, यह छोटी सी पुस्तक, इस पुस्तक का एक पद राम के हृदय को हिला देता है और उसे उन्नत कर उसमें ईश्वरत्व का विकास कर देता है। यह पुस्तक नीच स्वभाव को नाश कर देती है, और तत्क्षण माया के पर्दे को फाड़ देती है। इसलिये राम आपको कहता है कि आप भी इसी प्रकार की पुस्तक अपने पास रक्खें, आप अपने पास कुछ ऐसे स्तोत्र रक्खें कि जो आपको वा आपके विचारों को उन्नत कर सकें, आपमें रूह फूँक सकें, अर्थात् आपको प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास कुछ ऐसे भजन रक्खें, जो आपको तत्काल प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास ऐसी कविता रक्खें जो आपको चोट लगावें वा ईश्वर की ओर प्रेरें, आप अपने पास बाइबिल, सर्मन ओन दी मौंट (Sermon on the Mount) रक्खें। आप अपने प्रिय (रुचिकर) लेखकों के पदों (फ़िक़रों) वा वचनों पर निशान लगायें, ऐसे पदों (फिकरों) पर कि जो आपमें रूह फूँक सकें, या ऐसी कोई बात पैदा कर दें कि जो आपके विचारों को ऊँचा करे। आप अपने पास एक छोटी नोटबुक रक्खें, जिसमें

* ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय स्वामीजी के पास अवधूत गीता थी।

आप ऐसे वचनों को जमा कर रक्खें कि जो आपको उत्तेजित करें, आपको ऊपर उठावें, जो आपको प्रार्थना वा उपासना-भाव से भर दें। आप इसी पुस्तक को रख लें, आप प्रसन्नता से इस पुस्तक के अन्त में यह कविता लिख लें। "Oh, brimful is my cup of joy"—"ओह! मेरे हर्ष का प्याला ऊपर तक पूर्ण है," यह कविता या ऐसी कोई बात जो सन्मार्ग में आपको उत्तेजित वा उत्साहित करे आप इसमें लिख लें, इसे आप हर वक़्त ठीक हाथ तले (समीप) रक्खें, और जब आप मित्रों से मिलकर हटें, या जब आप भिन्न-स्वभाव संगत को छोड़ें, तब अपने मन को भटकने, विक्षिप्त वा सारा काल भ्रमित अवस्था में रहने देने के स्थान पर आप तत्काल उस रूह फूँकनेवाले, उत्तेजित वा प्रबोधन करनेवाले पद को ले लें, और उससे अपने चित्त को स्थिर वा सावधान करें।

अब आप देखें कि राम ने आपको कारण अर्थात् मन का साधारण रोग बता दिया है। राम ने साधारण रीति से मानुषी आध्यात्मिक रोग को आपके सामने रख दिया है। साधारण रोग (मन का) यह चञ्चल स्वभाव है। और राम ने आपको बता दिया है कि कैसे हम मन को स्थिर व अचल रख सकते हैं।

हम इस विषय को अब दूसरे समय शुरू करेंगे।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

करते, बहुत-सी बातों को हम यों ही मान लेते हैं, हम अपने लिये सोचने का काम बाह्य शक्तियों के भरोसे छोड़ते हैं।"

हम लोग भीतर बैठकर नहीं देखते, अपने बल पर भरोसा नहीं रखते; दूसरे जो कुछ कह देते हैं, उसे ही स्वयं-सिद्ध मान लेते हैं। मुहम्मद, बुद्ध और कृष्ण में विश्वास रखने के अतिरिक्त हम लोगों ने बेहिसाब अपूज्य देवताओं को गढ़ रक्खा है, जिनके आगे हम सिर झुकाते हैं। एक बालक ही यदि हमारे आचरण की टीका-टिप्पणी कर डालता है, तो बस, उतना ही हमारी शान्ति को भंग करने के लिये, हमें क्लेश पहुँचाने के लिये काफ़ी है। हम दूसरों के विचारों, दूसरों की आलोचनाओं की हद से ज्यादा परवाह करते हैं, और उन की कृपा संपादन करने में बेहिसाब समय बरबाद करते हैं। अपने आपको अड़ोस-पड़ोस के लोगों की ही आँखों से देखना, अपने सच्चे स्वरूप पर स्वयं ध्यान न देना बल्कि दूसरों की ही दृष्टि से अपना निरीक्षण करना, यह जो भाव है, यही हमारे सारे दुःखों का कारण है। दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने की जो आदत है, उसे ही वृथा अभिमान आत्म-श्लाघा ( ) कहते हैं। हम दूसरों की नज़रों में अति भले जँचना चाहते हैं। यही समाज का सामाजिक दोष है, और सब धर्मों का प्रधान अपराध है।

हिन्दुस्तान के एक ग्राम में एक बाबा पागल (ग्राम पागल) रहता था। वैसे तो अभिनय में अपने मज़ाक से हमारे को उल्लू बनाने वाले हैं वैसे ही भारतवर्ष में साधु के भेष में लोग स्वयं पाखण्ड व लोगों को अंधविश्वास में डालने में ( ) करते हैं उस ग्राम के बाबा ने स्वयं को उस भेष में मज़ाक उड़ाने का स्वयं [illegible] इस उस संघ ने उसे बड़ा साधु [illegible]

अभिमानी और 'फ़ैशनेबुल' लोग ऐसी ही विकट असंभव बातों को कर रहे हैं। न तो वे अपने नेत्रों से देखते हैं और न अपने दिमाग़ से सोचते हैं। यहाँ ही देखिये, आपका अपना आत्मा, आपका सत्य स्वरूप, प्रकाशों का प्रकाश, निरंजन, परमपवित्र, स्वर्गों का स्वर्ग, आपके भीतर विद्यमान है। आपका अपना आप, आपका आत्मा सर्वदा जीवित, अजर, अमर, नित्य उपस्थित है, फिर भी आप रो-रोकर आँसू ढारते हुये कहते हो, "अरे, हमें सुख कब प्राप्त होगा ?" और देवताओं का आवाहन करते हो कि वे आकर तुम्हें विपत्ति से उबार दें। आप देवताओं के आगे प्रणिपात होते हो, नीच प्रकृति (sneeking habits) का अवलंबन करते हो, और स्वयं अपने को तुच्छ समझते हो, क्योंकि अमुक लेखक, अमुक उपदेशक वा महात्मा अपने को पापी कह गया है, और वह हमें कीड़े कहकर पुकारता है, इसलिये हमें भी वही करना चाहिये, इसलिये अपने को मृतक समझने में ही हमारी मुक्ति है। इसी तरीक़े से लोग सब चीज़ों पर दृष्टि डालते हैं: पर इससे काम चलने का नहीं। अपने निज-जीवन का अनुभव करने लग जाओ: अपने निजात्मा को भान करना आरम्भ कर दो। इस नशे की हालत को विदा करो कि जो आपको अपनी मृत्यु पर रुला रहा है। अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ, चाहे आप छोटे हो वा बड़े, चाहे आप उच्च पद पर हो वा नीच पद पर, इसकी तनिक परवाह न करो। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करो। चाहे कोई हो, उसकी ओर निःशंक दृष्टि से देखो, हटो मत। अपने आपको औरों की दृष्टि से अवलोकन मत करो, बल्कि अपने आप में देखो। आपका अपना आप आपको बारंबार यह उपदेश देगा कि "सारे संसार में सबसे महान् (आत्मा) हो।"

घर के दूसरे कोने में रक्खी जाय, तो उसे अँधेरे में जब वहाँ जाना होगा, तब वह वहाँ चोट खायगा। जब तक अंधकार है, तब तक हाथ, पाँव, गर्दन वा सिर अवश्य टूटेगा, अवश्य ही कभी सिर दीवाल से टकरा उठेगा, यह बचाया जा नहीं सकता। यदि घर में सिर्फ़ चिराग़ जला दो, तो फिर आपको परेशान होने की ज़रूरत नहीं। जो जहाँ है, उसे वहीं रहने दो, आप एक जगह से दूसरी जगह बिना चोट खाये जा सकते हैं।

संसार की भी यही दशा है। यदि आप अपने दुःखों का अन्त करना चाहें, तो आपको इसके लिये अपनी बाह्य परिस्थिति पर वा अपने सामाजिक पद (ओहदे) के समाधान (adjustment) पर भरोसा नहीं करना चाहिये, वरन् अन्तर्स्थित सूर्य के समीकरण के उपाय पर भरोसा रखना चाहिये। सब कोई, मानो फरनीचर (furniture, सामान) को यहाँ से वहाँ हटा कर, वा सांसारिक पदार्थों को इधर से उधर फेरकर, द्रव्य इकट्ठा कर, वा बड़े-बड़े महल बनवाकर, अथवा दूसरों की ज़मीन मोल लेकर, दुःख से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। अपनी परिस्थिति के सुधारने, वा चीज़ों को इस तरह वा उस तरह सजाने से आप कभी दुःख से नहीं बच सकते। केवल अपने घर में दीपक जलाने से, प्रकाश प्रकाशित करने से, केवल अपने हृदय की अँधेरी कोठरी में ज्ञान का प्रवेश करने से ही दुःख छूट सकता, हटाया जा सकता और दूर किया जा सकता है। अन्धकार दूर होने दो, फिर कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता।

यह कैसे संभव है कि संसार के महाभयास्पद (Bug bears, हौवेवाटे) आप पर कोई प्रभाव डाल सकें ?

जब इन महान् तारागणों के सामने यह पृथ्वी शून्यता को प्राप्त हो जाती है, तब उन सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश की उपस्थिति में—मेरे सत्य-स्वरूप आत्मा के सम्मुख इन विचारी लौकिक बाधाओं और चिन्ताओं की, भला, कैसे कुछ गिनती हो सकती है ?

तत्त्व का साक्षात्कार करो, उसका अनुभव करो, उसे अपना जीवन बनाओ, और जब आप उसकी पराकाष्ठा (पूर्ण सत्ता) का अनुभव कर लोगे, तब कोई भी, कुछ भी, आप को विचलित नहीं कर सकेगा। चाहे करोड़ों सूर्य्यों का प्रलय हो जाय, अगणित चन्द्रमा भले ही गल कर नष्ट हो जायँ, पर अनुभवी ज्ञानी पुरुष मेरु की तरह अटल वा अचल रहता है। उसे क्या हानि हो सकती है ? भला संसार में ऐसा है ही क्या जो उसे कष्ट दे सके ?

अहो, आश्चर्य्य ! महाआश्चर्य्य !! ऐसी महान्, ऐसी असीम अवर्णनीय महिमा-पूर्ण आपका सत्य स्वरूप है, और (फिर भी लोग) इसे भूल जाते हैं।

वह सूर्य्य, वह अनन्त सूर्य्य, आँखों पर के एक छोटे से पर्दे से छिपा है। और परदा आँखों के इतना निकट है कि सारा संसार उससे ढका हुआ है। ऐसा तेजोमय उज्ज्वल तत्त्व और

चाहते हैं, तो आपको उन इच्छाओं को त्यागना चाहिये, उनसे परे हो जाना चाहिये। पर उस (मजनूँ) बिचारे को यह रहस्य मालूम नहीं था। फिर भी संसार भर में वह आदर्श प्रेमी था। कहते हैं कि भारी निराशा के कारण उसका दिमाग बिगड़ गया, वह उन्मत्त हो गया। और बिचारा यह पागल शाहज़ादा अपने माता-पिता, घर-द्वार को छोड़ वन-वन में भटकने लगा। यदि वह कोई गुलाब का फूल देखता, तो उसे अपनी प्रिया समझ, उसके पास दौड़ जाता, इसी तरह वह (लैला) सरु वृक्ष को माशूक़ा (प्रिया) समझ प्यार करता। हरिन को देख वह उसे अपनी माशूक़ा समझता और उसके पास जाता। ऐसा ही उसका भाव था: वह हर जगह उसे देखता और इन क्षुद्र वस्तुओं को अपनी माशूक़ा के रूप में परिणत कर डालता। किन्तु उसके प्रेम का विषय भौतिक था, इसी से उसे इतना कष्ट भोगना पड़ा।

राम कहता है, प्रेम करो और मजनूँ की तरह प्रेम करो, किन्तु ईश्वर को, आत्मा को, उस परमात्मदेव को अपना प्रेम-पात्र बनाओ। क्या सारा संसार ही सुख के पीछे पागल वा उन्मत्त नहीं हो रहा है? और सुख 'ईश्वर' का ही पर्य्यायवाचक शब्द है। मजनूँ बिचारा जानता ही न था कि सच्चा परम सुख वा ईश्वर मिलता है। वृक्षों में, पशु-पक्षियों में जिस मजनूँ

प्रेम रखना चाहिये. अपने आत्मा को अवश्य प्यार करना चाहिये. उसे ही अपना प्रेमपात्र समझना चाहिए। उसे प्यार करो. अनुभव करो. सजनूँ की तरह अनुभव करो. ताकि और कोई वस्तु आपके पास न आने पावे. जब तक कि वह प्रियतम सत्य स्वरूप के ही रूप में उपस्थित न हो। उसमें आप केवल प्रियतम देव को देखो. और कुछ नहीं।

इस पर शायद आप कहो. "क्या जरूरत है ? हम इसे अनुभव करना नहीं चाहते। हम तो अपने इस नरक में ही सुखी हैं।" तोराम कहता है. "सम्भव है कि आप सुखी हों. किन्तु आप का ध्येय वही है। अतः सड़क पर पैर घसीटते चलने में समय नष्ट करने से क्या लाभ ? यहाँ आपको आना ही पड़ेगा : पर कीचड़ में चलकर परेशानी तो न उठाओ। रेल की ऊँची सड़क पकड़ो. बिजली की गाड़ी. नहीं-नहीं. विमान ले लो. सड़क के किनारे अपना वक्त बरबाद मत करो।"

आप प्रतिदिन अपने अड़ोस-पड़ोस का अवलोकन करें. [illegible]

कठिनाइयों में जा फँसते हैं, और तब कुछ काल के बाद वे धर्म की शरण में आते हैं। कहते भी हैं कि विपत्तियाँ मनुष्य को धर्ममुख करती हैं (Misfortunes lead to religion)।

इसी तरह आपके दैनिक जीवन में दिन-रात हुआ करती है, प्रत्येक दुःख की रात्रि के बाद सुख की प्रभात आती है, और प्रत्येक सुख के दिवस के बाद दुःख की निशा होती है। जब तक आप बाह्य रूपों में आसक्ति रक्खेंगे, तब तक यह उत्थान और पतन होता ही रहेगा, एक के बाद दूसरे का आना जारी रहेगा। पर इस आन्तरिक उत्थान-पतन का उद्देश्य क्या है? आपको अपने भीतर के सूर्य्य का अनुभव कराना ही इस आन्तरिक पतनोत्थान का उद्देश्य है।

पृथ्वी पर रात्रि और दिवस होता है। पर सूर्य्य में सर्वदा दिन ही दिन रहता है। पृथ्वी के घूमने से ही दिवा-रात्रि होती है, पर सूर्य्य में रात होती ही नहीं, वहाँ सदा दिव्य प्रकाश, सदा दिन रहता है।

आप पर आपत्ति दुःख और चिन्तायें इसलिये आती हैं कि आप भीतर के वैकुंठ का अनुभव करें। इनका काम आप को यही सुझाने का है कि आप हृदयस्थ सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश का अनुभव करें। और जिस समय आपने अनुभव कर लिया, उसी समय आप सारे सांसारिक दुःख-द्वंद्वों से, परिवर्तनों से परे हो गये।

अच्छा, हम लोगों को उन्नत करना ही इन दुःख आदि का उद्देश्य कैसे है? सुख का प्रथमागमन हमें यह बतलाता है कि सुख सदा उसी समय मिलता है, जिस समय हम अपने भीतर के आत्मदेव से संलग्न वा निमग्न रहते हैं, अथवा जिस समय हम विश्व के साथ अपनी एकता भान करते हैं। इस प्रकार यह हमें बतलाता है कि जब हमारी विश्व के साथ जिस से एकता हो

उच्छेदन मत करें, और न आप नाम रूप पर आसक्त होकर ईश्वर को ही भुला दें। सभी दुःख और सभी सुख आपको वेदान्त का पाठ पढ़ाते हैं। जब सब लोग इस पर विश्वास नहीं करते, तो क्या इससे कुछ और सिद्ध हो जाता है? नहीं, इससे केवल यही सिद्ध होता है कि इस सत्य को दुनिया नहीं समझ पाती, इसी से दुनिया दुःखी है। सत्य का अनुभव आप करो, फिर आप सुखी होंगे।

भारत में मिट्टी के बरतन बनाने के लिये अमेरिका के समान मशीन (कला) नहीं है। वहाँ कुम्हार चाक पर बरतन गढ़ते हैं। चरणों से एक गहरे भाँडे में मिट्टी गूँधी जाती है। और दोहरी रीति बर्ती जाती है। भीतर की ओर से किसी वस्तु का आधार देकर बाहर से उसे थपथपाते हैं, जिसमें मिट्टी को बरतन में घड़ लेते हैं।

भटकने लगा, पर वह न मिला। किसी ने उससे कहा कि हार तो तुम्हारे ही पास है, और वह बड़ा खुश हुआ। यथार्थ में हार मिला नहीं था, क्योंकि वह तो बराबर वहीं था। वह खोया नहीं था, बल्कि भूल गया था। इसी तरह आपका सच्चा आत्मा, "मैं हूँ", कल, आज, सदा एकसाँ रहा है, और रहेगा; किन्तु मन या बुद्धि को केवल अज्ञान पर विजय पाना है। मन जब विश्वास करता है कि मूल्यवान् हार मिल गया, तब इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि आपको अपनी स्वाधीनता फिर मिल गई। आपको अपना प्यारा हार मिल गया, जो यथार्थ में कभी खोया ही नहीं था।

प्रश्न—क्या हमारी आत्मा का व्यक्तित्व निरन्तर बना रहता है?

उत्तर—आप समझ सकते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर "आत्मा" शब्द के अर्थ पर निर्भर है। यदि रूह (Soul) का अर्थ आत्मा माना जाय, तो वह न कभी जन्मा था, और न मरेगा। जब जन्म और मृत्यु ही नहीं, तो निरन्तरता कहाँ से आ सकती है। यदि "आत्मा" को आप आने-जानेवाला शरीर या सूक्ष्म शरीर समझते हैं, तो जीवन की धारा अविच्छिन्न वा निरन्तर है

दौलत को छोड़कर दूसरी तरह का जीवन क्यों अपना रहे हैं। अवश्य ही एक तरह का जीवन छोड़कर दूसरी तरह का जीवन कोई भी मनुष्य तब तक नहीं ग्रहण करता, जब तक नये जीवन में पुराने की अपेक्षा अधिक सुख, अधिक चैन नहीं समझता। इससे स्पष्ट है कि अपने वर्तमान जीवन की अपेक्षा मेरे पति को उस जीवन में, जिसे वह ग्रहण करनेवाला है, अधिक सुख-चैन होगा।" उसने सोचा और अपने पति से पूछा, "क्या सांसारिक सम्पत्ति की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति में अधिक सुख है, अथवा इसके विपरीत है?"

याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, "अमीरों की जिन्दगी जो कुछ है सो है, परन्तु उसमें असली सुख, सच्चा आनन्द, वास्तविक स्वाधीनता नहीं है।" तब मैत्रेयी ने कहा, "वह कौन सी चीज है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को स्वतंत्र बना देती है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को लौकिक लोभ और तृष्णा से मुक्त कर देती है? वह जीवन-सुधा मुझे बताओ, मैं उसे चाहती हूँ।"

याज्ञवल्क्य का सब धन और दौलत तो कात्यायनी के हाथ लगा, और मैत्रेयी को उनकी सब आध्यात्मिक सम्पत्ति मिली। वह आध्यात्मिक सम्पत्ति क्या थी?

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। (बृह० उपनिषद्)

इस पंक्ति के कई अर्थ हैं। मोक्षमूलर ने इसका कुछ और अर्थ किया है। बहुतेरे हिन्दू एक दूसरा ही अर्थ करते हैं। एक अर्थ के अनुसार, "पति के प्रिय होने का कारण यह नहीं है कि उसमें कुछ गुण हैं, या उसमें कोई विशेषता है, जो [illegible] के योग्य है, उसके प्रिय होने का सबब यह है कि वह

स्त्री के दर्पण का काम देता है। जिस तरह से हमें शीशे में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी तरह अपने पति रूपी दर्पण में स्त्री अपने आपको देखती है, और इसीलिये वह पति को प्यार करती है, इसीसे पति उसे प्यारा है।"

दूसरा अर्थ यह है कि "स्त्री पति के लिये नहीं प्यार करती, बल्कि इसलिये कि उसे पति में सच्चे तत्त्व, परमेश्वर, सच्चे परमात्मा के दर्शन होने चाहिये।"

आप जानते हैं कि यदि प्रेम के पलटे में प्रेम नहीं मिलता, तो कोई प्रेम नहीं करता। इससे जाहिर होता है कि दूसरों में प्रतिबिम्बित केवल अपने आप ही को हम प्यार करते हैं। हम अपने सच्चे आत्मा को, भीतरी ईश्वर को, देखा चाहते हैं और कभी किसी वस्तु को हम उसी के लिये प्यार नहीं करते।

यह एक कल्पना है। इसे जाँचिये. इसकी छान-बीन कीजिये. और आपको यह मालूम होगा कि वस्तुओं के प्यारी होने का कारण सच्चा अपना आप है। सम्पूर्ण मधुरता आप

"सचमुच, लड़के के लिये लड़के प्यारे नहीं हैं, किन्तु (आत्मा के) लिये लड़के प्यारे हैं।"

"लड़के सच्चे अपने आप, सच्ची आत्मा के लिये प्यारे हैं।" जब आपके लड़के आपके विरुद्ध हो जाते हैं, तब आप खिन्न होते हैं, उन्हें भगा देते हैं, अपने पास से हटा देते हैं। अरे, तब तो आप देख सकते हैं कि लड़के किसके लिये प्यारे थे।

उदाहरण के लिये, आपको अपने लड़के के लिये कुछ कपड़ों की जरूरत पड़ती है। आपको कपड़े बहुत अच्छे लगते हैं, परन्तु कपड़े कपड़ों के लिये आपको प्यारे नहीं हैं, बल्कि लड़के के लिये प्यारे हैं। लड़का कपड़ों से अधिक प्यारा है। इस तरह हम देखते हैं कि लड़का अपने निजस्वरूप आत्मा के लिये प्यारा लगता है। आत्मा में, सच्चे अपने आपमें अवश्य ही लड़के से अधिक सुख या अधिक आनन्द होगा।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥ ५ ॥ (बृहदारण्यक उपनिषद्, दूसरा अध्याय, ४ ब्राह्मण)

"सचमुच, सम्पत्ति के लिये सम्पत्ति प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने आपके लिये सम्पत्ति प्यारी होती है।"

आप इस देवता और उस देवता से विनय करते हैं, और [illegible] हैं कि "हे देव ! आप बड़े श्रेष्ठ हैं, आप बड़े कृपालु [illegible] दयालु हैं, आप बड़े सुन्दर हैं, आप ही सब कुछ करते हैं।" इत्यादि। ऐसा आप क्यों कहते हैं ? इसलिये कि देवता आपकी जरूरतों को पूरा करता है, इसी कारण से कि देवता आपके अपने आपकी, आपमें असली सच्चे अपने आपकी [illegible] करता है। देवता के लिये आप देवता की विनय नहीं [illegible], बल्कि अपने लिये करते हैं। इस पर ध्यान दो। सच्चा [illegible] आप सब सुखों का, आनन्द का मूल है। इसे जानो इसे अनुभव करो।

हिन्दुस्थानी कठपुतली के तमाशे में एक आदमी परदे के पीछे बैठा रहता है, और उसके हाथ में बहुत से महीन तार होते हैं। ये तार पुतलियों की स्थूल देह से जुड़े रहते हैं। जो लोग पुतलियों का नाच देखने आते हैं, उन्हें ये महीन तार नहीं दिखाई पड़ते, और न उन तारों का खींचनेवाला ही परदे के पीछे बैठा देख पड़ता है। इसी तरह, इस संसार में, ये सब स्थूल शरीर, स्थूल कठपुतलियों के तुल्य हैं। आम तौर से लोग इन्हीं स्थूल शरीरों को वास्तविक रूप से करने-वाला, स्वतंत्र और कर्त्ता मानते हैं, और बाह्य देह-दृष्टि अर्थात् परिच्छिन्नात्मा की ही दृष्टि से सब बातचीत करते हैं। वे शरीर को स्वतंत्र कर्त्ता समझते हैं, और यदि उनके मित्र तथा नातेदार उनके अनुकूल कुछ करते हैं या उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, तो वे प्रसन्न होते हैं। पर यदि मित्र और नातेदार उनके विपरीत काम कर बैठते हैं, तो घृणा, निराशा, फूट और बेचैनी पैदा हो जाती है, और मित्रों तथा नातेदारों को चाहने के बदले वे उनसे नफ़रत करने लग जाते हैं। ये एक प्रकार के लोग हैं। दूसरे प्रकार के लोग, जो उच्च श्रेणी के हैं, महीन तार, डोरों पर बड़ा ज़ोर देते हैं। ये लोग अधिक बुद्धिमान, अधिक तत्त्वज्ञ

शक्ति, सबको भान करनेवाली शक्ति, ये सबके सब यथार्थ में उसी अकथनीय शक्ति स्वरूप आत्मा से नियंत्रित होते हैं, जो देश, काल या वस्तु से परिच्छिन्न नहीं है। यही सच्ची अमरता, यथार्थ सुख, आनन्द और प्रसन्नता है। यही सब कुछ है। यही आत्मा है।

इन सब उपद्रवों से स्पष्ट होता है कि लोगों के ये सकल सम्बन्ध और सम्पर्क मानो मानव-जाति के लिये उपदेश हैं, वे मनुष्यों के लिये एक प्रकार की शिक्षा हैं। आपके सांसारिक सम्बन्ध और सम्पर्क आगे चलकर जिस महान् अवस्था में आपको खींच ले जाते हैं, वह अपने निज स्वरूप का अनुभव है, जो तार खींचनेवाला या पर्दा की ओट में असली तत्त्व है। ये उपद्रव आप पर स्पष्ट करते हैं कि आपको अपने आपका अनुभव करना चाहिये, आपको अपने स्वरूप की असलियत का बोध होना चाहिये, जो सबके पीछे है, जो मनुष्य के मन और शरीर का भी शासक और नियन्ता है। लोगों के मन और शरीर भी इस परम शक्ति, इस वास्तविक प्रेम, इस उत्कृष्ट तत्त्व के शासन के अधीन हैं।

इस तरह यह देखना और समझना है कि जब आप किसी सुहृद् का अवलोकन करते हैं, तब आप उसकी ओट में स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप का अवलोकन करते हैं; जब आप उसे बातचीत करते सुनते हैं, तब सुनने की क्रिया का नियमन आपके भीतर के निज स्वरूप द्वारा हो रहा है; जब किसी मित्र की शक्ति आपके ध्यान में आती है, तब उसके भीतर परमेश्वर पर आपका ध्यान जाता है; जब आपको इस शक्ति का परिज्ञान हो जाता है, तब आप धोखे में नहीं होते, आपको क्लेश नहीं होता, आप चुभित नहीं होते।

ठीक जैसे लोग जड़ पुतलियों को देखते हैं, उसी तरह ये लोग हैं कि इस सबके पीछे शक्ति मेरा सच्चा स्वरूप है।

लोगों के कामों के पीछे की ताक़त को देखो। उसका अनुभव करो, और जानो कि तुम वही हो। उसे भी उसी उग्रता या गंभीरता से जानो, जिस उग्रता से तुम रूप और रंग को जानते हो।

ब्रह्म तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद।
सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्मं, इदं क्षत्रं, इमे लोकाः, इमे देवाः।
इमानि भूतानि, इदं सर्वं, यदयमात्मा ॥ ६ ॥
(बृह० उपनिषद्)

"जिस किसी ने ब्राह्मणत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसे ब्राह्मणत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने क्षत्रियत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसी को क्षत्रियत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने लोकों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र समझा, उसी को लोकों ने त्याग दिया। जिस किसी ने देवताओं को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र जाना, उसको देवताओं ने दूर कर दिया। जिस किसी ने प्राणियों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को प्राणियों ने त्याग दिया। जिस किसी ने भी किसी भी वस्तु को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को उसने वस्तु ने त्याग दिया। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षात्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये प्राणी, यह सब वही आत्मा है।" यह तो आत्मदेव का स्पष्ट और सरल व्याख्या हुई।

ऐसे अपने दिलों में उतर जाने दो, और तब आप

अपेक्षा असली तत्त्व को ही अधिक देखना चाहिये। ऐसा करने से सांसारिक सम्बन्ध और सांसारिक काम बड़ी मधुरता से, सरलता से, अविषमता से चलेंगे। अन्यथा संघर्ष, दिक्कत और क्लेश होगा। यही विधान है।

यहाँ पर हम एक कहानी कहेंगे:—

एक छोटे गाँव में एक पगली औरत रहती थी। उसके पास मुर्गा था। गाँव के लोग उसे छेड़ा करते थे, उसके नाम धरा करते थे, और उसे बहुत परेशान करते और क्लेश पहुँचाते थे। अपने निकट रहनेवाले अपने गाँव के लोगों से उसने कहा—"तुम मुझे तंग करते हो, तुम मुझे हैरान और दुःखी करते हो; देखो, अब मैं तुमसे बदला लूँगी, मैं तुम्हारी करतूतों का प्रत्युत्तर दूँगी और तुमसे सख्त बदला लूँगी।" पहले तो लोगों ने उसके कहने पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चीखी, "गाँववालो, खबरदार! सावधान! मैं तुम पर बड़ी सख्ती करूँगी।" उन्होंने उससे पूछा कि "तू क्या करनेवाली है।" उसने कहा—"मैं इस गाँव में सूर्य न उदय होने दूँगी।" उन्होंने उससे पूछा कि "किस तरह तू ऐसा करेगी।" उसने उत्तर दिया, "जब मेरा मुर्गा बाँग देता है, तब सूर्य उदय होता है। यदि तुम मुझे इसी तरह दिक्कत करते रहोगे, तो मैं अपना मुर्गा लेकर दूसरे गाँव को चली जाऊँगी, और तब इस गाँव में सूर्य न उदय होगा।"

यह सही है कि जब मुर्गा बाँग देता था, तब सूर्य उदय होता था, किन्तु मुर्गे की बाँग सूर्योदय का कारण न थी। कदापि नहीं। उसे बड़ा कष्ट था, उसने गाँव छोड़ दिया, और दूसरे गाँव को चली गई। जिस गाँव में वह गई, वहाँ मुर्गा बोला और उस गाँव में सूर्योदय हुआ। किन्तु जिस गाँव को वह छोड़ आई थी, उसमें भी सूर्य उदय हुआ। इसी प्रकार मुर्गे का व[illegible] देना आपकी अभिलाषाओं की याचना और चाह भरी

एवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनम्, एवं सर्वेषां शब्दानां
एवं सर्वेषां संकल्पानां मन एकायनम्, एवं सर्वासां विद्यानाम्
मेकायनम्, एवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनम्, एवं सर्वेषामानन्दानां
मुपस्य एकायनम्, एवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनम्, एवं सर्वेषामध्वनां
पादावेकायनम्, एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ ११ ॥

"जिस तरह जल-मात्र का केन्द्र समुद्र है, इसी प्रकार सब स्पर्शों की त्वचा, सब गन्धों की नाक, सब रसों (स्वादुओं) की जिह्वा, सब रंगों का नेत्र, सब शब्दों का कान, सब संकल्पों का मन, सब विद्या का हृदय, सब कर्मों का हाथ, सब आनन्दों का उपस्थ, सब त्यागों की पायु, सब गतियों का पैर और सब वेदों की वाणी केन्द्र वा गति है।"

उसी तरह सम्पूर्ण संसार और संसार के सब पदार्थ अपना केन्द्र निज स्वरूप, पवित्र आत्मा में रखते हैं। सब रंगों का केन्द्र भी उसी में है। सब शब्दों, रंगों, रसों, इन्द्रियों द्वारा कर्मों का अपना केन्द्र केवल आत्मा या निजस्वरूप में मिलता है। उसी से हरएक वस्तु निकलती है।

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते, न हास्योद ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेव। एवं वा अर इदं महद्भूत मनन्तमपारं विज्ञानघन एव, एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमि, इति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥

"पानी में डाला जाने पर निमक का ढेला जिस तरह गल जाता है और फिर निकाला नहीं जा सकता, किन्तु सब कहीं (पानी में) हमें निमक का ही स्वाद मिलता है, उसी तरह सचमुच, ऐ मैत्रेयी, यह अनन्त, निस्सीम, महद्भूत, जो विज्ञान- है, इन तत्त्वों से आविर्भूत होता है, और फिर में विलीन हो जाता है। हे मैत्रेयी! मैं कहता हूँ, जब वह जाता है, तब कोई संज्ञा नहीं रहती।" यह याज्ञवल्क्य

ने कहा। इन तत्त्वों का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की उससे एकता हो जाती है, तब वह नाम और रूप के आश्रित नहीं रहता।

सा होवाच मैत्रेयी, 'अत्रैव मा, भगवान् मूमुहत्, न प्रेत्य संज्ञास्ति', इति।

तब मैत्रेयी ने कहा, यह कहकर आपने मुझे भ्रम में डाल दिया कि "जब वह चला जाता है, तब उस (प्रेत) की संज्ञा नहीं रहती।"

मैत्रेयी के मन में सन्देह हुआ कि यदि यह आप ही सब क्लेशों का लानेवाला है, यदि यही कष्ट और रंज तथा प्रत्येक उत्पत्ति का कारण है, यदि हमारा मन कुछ भी नहीं है, यदि हमारा व्यक्तित्व जब विनष्ट हो जाता है, तब तो अवश्य हमारा पूर्ण लोप है। इसलिये उसने कहा, "मैं विलोप नहीं चाहती। आपका यह अपना आप किस काम का जब कि वह विलोप, मृत्यु, विनाश रूप है? मैं इसे नहीं चाहती, यदि सर्वस्व खोना पड़ेगा, तो भी मैं इसे नहीं चाहती।"

स होवाच, न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा, अरे इदं विज्ञानाय ॥१३॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति, यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्, तत् केन कं जिघ्रेत्, तत् केन कं पश्येत्, तत् केन कं शृण्वीत, तत् केन कमभिवदेत्; तत् केन कं मन्वीत, तत् केन कं विजानीयात्? येनेदं सर्वं विजानाति, तं केन विजानीयात्? विज्ञातारमरे केन विजानीयात्? ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "ओ मैत्रेयी, मैंने भ्रम में डालनेवाली कोई बात नहीं कही, प्रिये! जानने के लिये यह काफी है। क्योंकि जहाँ यह द्वैत-सा होता है, वहीं एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे

किसी बात या तत्त्व को पूरी तरह समझने का क्या अर्थ है ?

पूरी तरह से किसी चीज को समझने का अर्थ उसे इन चुंगलों से, इन फलाटों से मजबूती के साथ पकड़ना है। जब किसी चीज का 'क्यों', 'कब' और 'कहाँ' आप जान लेते हैं, तब आप उसे समझ जाते हैं, उसका बोध हो जाता है। यों कह सकते हैं कि तब वह आपके, बुद्धि के, अधीन स्थित है। आपकी बुद्धि उसमें और उसके मध्य में होकर स्थित है, और वह बुद्धि के अधीन स्थित है।

बुद्धि, समझ, तीन चुंगलवाले विचित्र चिमटे के समान है। बुद्धि से सब चीजें समझी जा सकती हैं, किन्तु इसके साथ ही यह बुद्धि, आपका यह चित्त, खुद चिमटे की तरह शरीर रूपी 'राज्य' के इस विचित्र 'शासक' व विचार-कर्त्ता के शासनाधीन है। समझ इस विचित्र शक्ति (आत्मा) के शासन के अधीन है, इसके प्रभुत्व में है।

क्या आपकी बुद्धि, आपका चित्त, स्वतंत्र है ? यदि है, तो वह सुषुप्ति की दशा में, गाढ़ निद्रा की अवस्था में, क्यों नहीं है ? यदि वह स्वतंत्र होती, तो सब दशाओं में ऐसी ही रहती। वह स्वाधीन नहीं है। बुद्धि, समझ, एक उच्चतर शक्ति के वश में है। बुद्धि में यह बल नहीं है कि वह उलटकर अनन्त वा शुद्ध आत्मा को पकड़ ले, जिसके अधीन कि वह स्वयं है। वह आपसे यह प्रश्न नहीं कर सकती, "क्यों, कब और कहाँ तुम थे ?" बुद्धि 'असली' व शुद्ध 'आत्मा' से प्रश्न करने की शक्ति नहीं रखती। बुद्धि 'आत्मा' को समझ या ग्रहण नहीं कर सकती। 'आत्मा' बुद्धि से ऊपर है, परे है।

बुद्धि यद्यपि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, तथापि वह अपने को उसमें वैसे ही निमज्जित कर सकती है, जैसे बुलबुले

समुद्र में। बुलबुले समुद्र से बाहर नहीं निकल सकते, किन्तु वे फूट कर उसमें डूब सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, किन्तु वह अपने को आत्मा में लीन कर सकती है। और वस्तुतः माया का यही सारांश और तात्पर्य है। बुद्धि आत्मा या परमेश्वर से यह नहीं पूछ सकती कि "क्यों, कब और कहाँ तुमने दुनिया की सृष्टि की?" साहस-पूर्वक वह प्रश्न नहीं कर सकती।

यह आत्मा, सत्ता का सच्चा समुद्र, यह शासक और परिचालक स्वरूप, यह अनुभव करने योग्य, निदिध्यासन करने योग्य, देखने योग्य और जानने योग्य है, जिससे अनन्त के साथ एक हो जाय। यह सच्चा स्वरूप या आत्मा 'मैं हूँ' कहलाता है। यह सच्चा स्वरूप वा पूर्ण 'अहं' देशकाल-वस्तु से परे है। इस पूर्ण, सच्चे स्वरूप का निरूपण ॐ से किया जाता है। ॐ का अर्थ है 'मैं हूँ', और ॐ को उच्चारण करते समय आपको किसी दूसरे के प्रति सम्बोधन नहीं करना पड़ता ॐ को उच्चारण करते समय यह न समझो कि आप अपने से बाहरवाले किसी दूसरे को पुकार रहे हैं। ॐ को

इसी तरह, यदि बुद्धि को अपने को किसी से तद्रूप करना है, तो अपने ही तत्त्व से, अपनी ही सत्य प्रकृति से (जिसको कि वह अपनी हुई है) उसे तद्रूप होना चाहिये। उसे बुद्बुदा हो जाना चाहिये, और फूटकर महान् समुद्र, आत्मा 'मैं हूँ' से एक हो जाना चाहिये। देह से उसको एकता नहीं की जा सकती। देह तो केवल एक कार्य या परिणाम है। और, इसीलिये देह से अपने को एक करने का बुद्धि को कोई अधिकार नहीं है।

अरे! सत्य ईश्वर को, आत्मा को, इस श्रेष्ठ शक्ति को सांसारिक सम्बन्धों, दुनियवी मामलों से एक नहीं किया जा सकता। तुम वही श्रेष्ठ परमात्मा हो। सत्य तत्त्व हो। यह जानो, यह विचारो, यह अनुभव करो, और (इस तरह) सकल क्लेशों तथा शोकों से परे हो जाओ या छूट जाओ।

घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं

३० दिसम्बर १९२२ को एकेडेमी आफ म्यूज़िक में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं तथा भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन्!

आज हमारे पास लोगों के बहुत से प्रश्न-पत्र हैं। जब एक वकील किसी अदालत को आता है, तब शायद वह इतने ही काग़ज़ात अपने साथ लाता है, किन्तु वे सब नहीं सुने जाते। इन प्रश्नों की विपुल संख्या ही इन सबको न सुनाये जाने और इनका उत्तर न देने का अवसर देती है। एक दूसरा कारण भी है, जिससे हम इनमें से बहुत से प्रश्न-पत्रों को हाथ में न लेवेंगे। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध प्रेत-लोक या परलोक से है। अभी आप इस लोक में हो, और जिस विषय से वर्तमान में आपका कोई सरोकार नहीं है, उस पर कुछ कहने की अपेक्षा से यह बेहतर होगा कि आपके हृदय और व्यवसाय से अधिक सम्पर्क रखनेवाले विषय की कुछ चर्चा की जाय।

पिछली बार जो विषय उठाया गया था, उसी को हम जारी रक्खेंगे। वह विषय बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। "आत्मानुभव प्राप्त करने की आकांक्षा करना क्या किसी विवाहित मनुष्य के लिये युक्ति-सङ्गत होगा?" यह विषय है। यह विषय लम्बा है, और आज की वक्तृता में ही इसकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती। फिर भी, आओ, देखें कि आज इसके बारे में हम क्या-क्या जान सकते हैं।

भारत में एक बड़ा ही निर्दयी और हास-जनक (रँगीला) मालिक था। वह अपने नौकरों को बड़े ही मज़ेदार ढंग से घोर पीड़ा दिया करता था। एक बार नौकर ने एक अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन (खाने की चीज़) मालिक के लिये तैयार किया। मालिक चाहता था कि नौकर उसे न खाय। वह चीज़ रात को पकाई गई थी। मालिक ने कहा, "हम इसे अभी न खायँगे, सवेरे खा लेंगे। इस समय लेटो जाकर, सवेरे हम लोग इसे चक्खेंगे।" मालिक का असल इरादा इसे सवेरे खाने का इसलिये था कि उस समय तक उसे खूब भूख लग जावेगी। रात को कुछ भी न खाने के कारण वह सवेरे चाट पोंछकर खा जायगा, और नौकर के लिये कुछ भी न बचेगा। यह मालिक की असली नीयत थी। वह चाहता था कि नौकर छिलके और टुकड़े खाय, परन्तु इस अभिप्राय को नौकर से साफ़ नहीं कह सकता था। उसने नौकर से कहा, "जाओ, आराम करो, और सवेरे हममें से वह मनुष्य से खायगा, जो बड़े ही सुन्दर और सुखकर स्वप्न देखेगा। यदि सवेरे तक अत्युत्तम स्वप्न तू देख लेगा, तो सारा हिस्सा तेरा होगा, अन्यथा सब मैं ले लूँगा और खा जाऊँगा, और तुम्हें अपने को छिलकों और टुकड़ों से संतुष्ट करना पड़ेगा।" सवेरा हुआ और मालिक तथा नौकर एक दूसरे के सामने बैठे। मालिक ने नौकर से कहा कि अपने स्वप्न को बयान करो। नौकर ने कहा, "जनाब, आप मालिक हैं, आगे आपको चलना चाहिये। आप अपने स्वप्नों को पहले बतावें, बाद को मैं अपने बयान करूँगा।" मालिक ने अपने मन में सोचा कि यह ग़रीब नौकर, यह जाहिल, अपढ़ मनुष्य अति मनोहर स्वप्न नहीं गढ़ सकता। वह कहने लगा, "मैं अपने स्वप्न में हिन्दुस्तान का महाराजा

रहा था।" मालिक ने पूछा "और तुमने क्या किया ? तुम्हें क़त्ल करने में उसका क्या अभिप्राय था ?" नौकर ने कहा, "उसने मुझसे वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को या मर जाने को कहा।" मालिक ने पूछा "और तब तुमने क्या किया ?" नौकर ने कहा, "मैं चुपके से रसोई घर में चला गया और हरएक पदार्थ खा गया।" मालिक ने कहा, "तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया ?" नौकर ने जवाब दिया, "जनाब, आप तो सारी दुनिया के बादशाह थे। आपके दरबार में बड़े लोगों का बहुत ही शानदार जमाव था, और लोग तलवारें निकाले तथा तोपें-बन्दूकें लिये हुए थे। यदि मैं आप महाराजाधिराज के पास पहुँचने का यत्न करता, तो वे मुझे मार डालते। मैं आपके पास पहुँचकर न बता सका कि मैं किस संकट में था। इसलिये वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को मैं लाचार हुआ, मुझे अकेले ही उसे चखना पड़ा।"

राम कहता है कि आप वचन-दत्त स्वर्ग (promised paradise), वचन-दत्त वैकुण्ठ व प्रतिज्ञाबद्ध परलोकों का स्वप्न देख रहे हैं। आप इन्हीं चीजों का स्वप्न देख रहे हैं, और ये रोचक स्वप्न हैं, ये मधुर स्वप्न हैं, और इन स्वप्नों में आप आकाश में महल बना रहे हैं, शायद बालू पर ही बना रहे हैं। आप आकाश में महल बना रहे हैं, और सोच रहे हैं कि "हमें यह करना चाहिए और वह करना चाहिए। हमें शैतान से डरना चाहिए और हमें ईश्वर से डरना चाहिए। हमें इस तरह बर्ताव करना चाहिए, अथवा अमुक-अमुक देवदूत हमें नरक से स्वर्ग न जाने देगा।" आप इन चीजों का स्वप्न देख रहे हैं, किन्तु राम कहता है कि वह नौकर होना बेहतर है, जिसने दैत्य के डर से उत्तमोत्तम स्वादिष्ट भोजन खा लिया था। ऐसा करना अच्छा है। यह एक ऐसी बात थी, कि

सम्बन्ध वर्तमान से था। वह एक ऐसी बात थी, जो उस समय सत्य थी। जो मामले आपके हृदय के निकट हैं, जिनका सम्पर्क आपके व्यापार और चित्त से है, पहले उन पर ध्यान देना अधिक वाञ्छनीय है, और परलोक अर्थात् स्वप्नों का वह लोक, अपनी फ़िक्र आप कर लेगा। उदारता का आरम्भ घर से होता है। पहले घर से आरम्भ करो।

राम अब उस प्रश्न पर आता है, जिसका वास्ता आप सबसे है। वह प्रश्न यह है, "विवाहित जोड़ा किस तरह रहे कि उनके विवाह का परिणाम संकट, चिन्ता, पीड़ा और रंज न हो? " लोग कहते हैं, "ऐ ईश्वर ! तू हमारी तकलीफ़ों को दूर कर दे। हे ईसा ! तू मेरे क्लेशों को हटा दे। हे कृष्ण और बुद्ध ! मेरे दुःखों को हर ले।" किन्तु राम कहता है कि मृत्यु के बाद वे आपकी तकलीफ़ों को दूर करें या न करें, पर इस जीवन में आपके कष्टों को कौन हरेगा ? इस जीवन में पति को स्त्री का ईसा मसीह होना चाहिए, और स्त्री को अपने पति का ईसा मसीह। पर हालत यह है कि हरएक स्त्री अपने पति के लिए और हरएक पति अपनी स्त्री के लिये जुडास इसकैरियट* (Judas Iscariot) हो रहा है। मामला कैसे सुधरे, बात ठीक हालत में क्योंकर आवे ? प्रत्येक पति प्रत्येक स्त्री को संन्यास का आलिङ्गन करना होगा। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा, ईसाई संसार के अनुसार, ...या संन्यास की मूर्ति थे। इसी तरह हरएक स्त्री यदि ...की मूर्ति हो जाय, तो वह अपने पति की त्राता हो ...ती है। संन्यास एक ऐसा शब्द है, जिससे हरएक काँपता

* हज़रत ईसा के उस शिष्य का नाम है, जिसने ईसा को समय पर धोखा दिया था। इसलिये धोकेबाज़ या दग़ाबाज़ से अभिप्राय है।

और धर्राता है। हरएक इस शब्द से धर्राता है, किन्तु बिना त्याग के आपके परिवार में कोई स्वर्ग लाने की जरा सी भी सम्भावना नहीं है। त्याग शब्द के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति है। पिछले व्याख्यानों में यह शब्द इतनी बार कहा गया है कि इसके असली अर्थ समझा देना अब बहुत जरूरी है। त्याग यह नहीं चाहता कि आप हिमालय के घने जंगलों में चले जायें; संन्यास यह नहीं चाहता कि आप सब कपड़े खोलकर नंगे हो जायें; संन्यास आपसे नंगे सिर और नंगे पैर चलने को नहीं कहता। यह त्याग नहीं है। यदि त्याग का यही अर्थ होता, तो विवाहित जोड़े के लिये त्याग का अभ्यास कैसे संभव हो सकता था? वे दोनों स्त्री और पति की तरह रहते हैं, उनके परिवार है, उनके सम्पत्ति है। वे लोग त्यागी कैसे हो सकते हैं? हिन्दू-धर्मग्रन्थों में त्याग का जो चित्र खींचा गया है, वह है एक साथ बैठे हुए भगवान् शिव और भगवती पार्वती का, और उनका परिवार उनके आस-पास है। भगवान् शिव और उनकी स्त्री पार्वती, एक साथ स्त्री-पुरुष की तरह रहते हैं, अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। हिन्दू-धर्मग्रन्थों में वे त्याग की मूर्ति कहे गये हैं। लोग समझते हैं कि त्याग शब्द से हिन्दुओं का अभिप्राय है वन को चले जाना, समाज से अलग रहना, हरएक वस्तु से दूर भागना, हरएक चीज से नफरत करना। पर हिन्दुओं के अनुसार त्याग शब्द के ये अर्थ नहीं हैं। अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी हिन्दुओं को संन्यास का चित्र खींचना पड़ता है। यदि यह वेदान्त, यदि यह तत्त्वज्ञान या सत्य केवल वन को चले जानेवाले थोड़े से लोगों के लिये होता, तो यह किस काम का है? हमें इसकी जरूरत नहीं। इसे गंगा नदी में फेंक दो, हमें यह न चाहिए। यह

जिसका हिन्दू प्रचार करते हैं, सबके काम का है। जिस तरह के त्याग की हिन्दू शिक्षा देते हैं, वह सफलता की एक-मात्र कुंजी है। कोई वीर अपने को विख्यात नहीं कर सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। कोई भी कवि आपको कोई कविता नहीं दे सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। आप बाइरन (Byron) का नाम लेंगे, जो इंग्लैंड से निकाल बाहर किया गया था, क्योंकि वह बड़ा ही दुराचारी समझा जाता था। वेदान्त कहता है कि बाइरन की भी मेधा-शक्ति (genius) का कारण संन्यास ही था। संन्यास की जो कल्पना राम आपके सामने रक्खेगा, वह अति विलक्षण है। वाशिंगटन त्यागी पुरुष है। यदि उसमें त्याग न होता, तो सभा में वह विजयी न होता। यह बड़ी ही अद्भुत बात है। क्या आप यह नहीं समझते कि हरएक नायक को, चाहे वह नेपोलियन बोनापार्ट हो चाहे वाशिंटन वा विलिंगटन हो, चाहे एलिक्जैंडर वा सीज़र हो, चाहे कोई भी हो, विजयी होने के लिए, राष्ट्रों का स्वामी बनने के लिए, सेनाओं का सञ्चालन करने की शक्ति पाने के लिए, अपने को व्यवहारतः सब संसार से सब सम्बन्धों से परे रखना पड़ता है। उसका चित्त संक्षोभ-रहित, शांत, सौम्य, उद्वेग-रहित और अचंचल अवश्य होना चाहिए, और एक बिन्दु पर उसे अपनी सब शक्तियाँ लगा देनी चाहिये। हालतों से उसे क्षुब्ध न होना चाहिए। और इसका मतलब है? इसका अर्थ मानो सब पदार्थों का त्याग किया जा सकता है। इस त्याग की मात्रा जितनी ही अधिक किसी मनुष्य में होती है, उतना ही वह श्रेष्ठ है। नेपोलियन रणभूमि में आता है, और केवल एक शब्द 'ठहरो' से हज़ारों आदमियों को रोक लेता है, जो उसे परास्त करने आये थे। यह कैसे? यह शक्ति कहाँ से आई? सच्चे, अजी

तत्त्व में, भीतर के परमात्मदेव में, अन्तरात्मा में नेपोलियन के लीन हो जाने से यह शक्ति मिली। यह शक्ति वहाँ से आती है। उसे चाहे इसकी खबर हो या न हो। वह शरीर से, चित्त से, हरएक वस्तु से परे खड़ा हुआ है; संसार उसके लिए संसार ही नहीं है। इसी प्रकार, सर आइज़क निउटन जैसे श्रेष्ठतम मेधावी (genius) को भी, अपने तत्त्वज्ञान और विज्ञान से दुनिया का वैभव बढ़ाने के लिए, प्रत्यक्ष इस त्याग का अनुभव करना पड़ा है। वह देह, चित्त और हरएक चीज से ऊपर उठ जाता है। वह घर में बैठा हुआ है, किन्तु घर उसके लिए घर नहीं है, मित्र उसके लिए मित्र नहीं हैं। कैसी समाधि की अवस्था है! लोग कहते हैं कि वह कुछ नहीं कर रहा है। लेकिन जब आप कहते हो कि वह कुछ नहीं कर रहा है, तभी वह अपनी सर्वोत्तम अवस्था में है। जाहिरा वह निस्तब्ध है, उसने हरएक वस्तु त्याग दी है, किन्तु वह अपनी परमोच्च दशा में है। ये लोग, ये वीर, ये नायक, ये अलौकिक-बुद्धि महापुरुष अज्ञाततः त्याग पर पहुँच जाते हैं। जिस सत्य को वे अनजाने अमल में लाते हैं, और जिसके द्वारा वे उन्नत होते और अपने को विख्यात करते हैं, उसी को आपके सामने विधिवत् रखना हिन्दू-तत्त्वज्ञान का उद्देश्य है। उस (सत्य) तक ठीक रास्ते से आपको पहुँचाना, उसे एक विज्ञान का रूप देना और उन क़ानूनों, नियमों तथा तरीक़ों को, जो उस तक आपको ले जाते हैं, आपको समझाना इस हिन्दू-शास्त्र का उद्देश्य है।

यह त्याग हिन्दुओं में ज्ञान-तुल्य कहा गया है, जिसका अर्थ विद्या है, अर्थात् त्याग और ज्ञान एक ही और अभिन्न वस्तु हैं। त्याग शब्द ज्ञान का पर्यायवाची है, किन्तु यह प्रचलित ज्ञान नहीं, भौतिक पदार्थों का ज्ञान नहीं

ठीक, इस (भौतिक ज्ञान) से भी आपको बड़ी सहायता मिलती है, किन्तु यह असली ज्ञान नहीं है, यह अकेला आपको कदापि कोई शान्ति नहीं दे सकता। जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है, वह सत्य का ज्ञान है, असली आत्मा का ज्ञान है; आप जो वास्तव में हैं, उसका ज्ञान है। अच्छा, आप जो कुछ हैं, उसका ज्ञान आपको बुद्धि द्वारा मिल सकता है। क्या वह यथेष्ट होगा? किसी हद तक, किन्तु पूरी तरह नहीं। इसलिये कि आप ज्ञानी हो सकें, आप जीवन्मुक्त हो सकें, यह विशाल संसार आपके लिये स्वर्ग हो जाय, आपको इस दिव्य ज्ञान का अनुभव करना होगा—इस ज्ञान का कि "आप परमात्मा हैं, आप दैवी विधान हैं, आप विदेह, परम शक्ति या तेज हैं, अथवा जो कोई भी नाम देना पसन्द करें, वह वस्तु आप हैं, या यह ज्ञान कि आप परमेश्वर हैं।" यह ज्ञान केवल बुद्धि द्वारा प्राप्त हुआ ही नहीं, बल्कि भाव की भाषा में भावित, आपके आचरण में आचरित, आपके रक्त में रंजित, आपकी नसों में दौड़ता हुआ, आपकी नाड़ी के साथ फड़कता हुआ, आपमें भिद कर और व्याप्त होकर आपको जीवन्मुक्त बना सकता है। यह ज्ञान त्याग है। यह ज्ञान प्राप्त करो, और आप त्यागी पुरुष हैं।

वन को चला जाना तो उद्देश्य-प्राप्ति का एक साधन है, विश्वविद्यालय को जाने के समान है। महाविद्यालय विद्योपार्जन करते हैं, परन्तु यह कभी नहीं समझा । कि हमें वहाँ सदैव रहना है। इसी तरह इस ज्ञान पाने के लिए आप कुछ काल के लिए भले ही जंगल को जायँ, किन्तु वेदान्त-दर्शन यह कभी नहीं सिखाता कि का नाम त्याग है। त्याग का आपके स्थान, स्थिति शारीरिक कार्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। उसे इन

ों से कोई मतलब नहीं । त्याग तो आपको केवल आपकी
ोच्च दशा प्राप्त कराता है, आपको आपके श्रेष्ठ पद पर
बिठाता है। त्याग केवल आपकी शक्तियाँ बढ़ाता है,
पके तेज की वृद्धि कराता है, आपका बल पुष्टतर करता
और आपको ईश्वर बना देता है । वह आपका सब रंज
लेता है, वह आपकी सम्पूर्ण चिन्ता और भय भगा देता
। आप निर्भय और सुखी हो जाते हैं ।

एक विवाहित पुरुष इस त्याग को कैसे पा सकता है ?
दे स्त्री और पुरुष एक दूसरे को सुखी करने की ठान लें,
आज ही मामला निपट सकता है । सब इंजीलें तब तक
ु भी भला नहीं कर सकतीं जब तक कि स्त्रियाँ और पति
ोग एक दूसरे के रक्षक और ईसा मसीह होना न ठान लें।
खिये, जब लोग धार्मिक व्याख्यानों में आते हैं, तब उनसे
एक चीज त्यागने को कहा जाता है, अपने शरीर और
म्पत्ति को ईश्वर का समझने के लिये कहा जाता है, और
पने को यह देह न मानकर ईश्वर मानने को कहा जाता
। [illegible] ऐसा उपदेश किया जाता है । [illegible] कुछ ज्ञान मिलता
[illegible] तब क्या होता है ? [illegible]

होती। यदि आप सचमुच उसे प्यार करती या करते हो, तो उस पर कुछ निछावर भी आप को करना चाहिए। पर क्या आप कुछ स्वार्थ-त्याग करते हो ? नहीं करते, नहीं करते। स्त्री पति को अधिकार में रखना चाहती है, और पति स्त्री का अधिकारी बनना चाहता है, मानो वह कोई जड़ पदार्थ है, जिसका वह अधिकारी हो सकता है, जो उसकी सम्पत्ति हो सकती है। एक दूसरे को अपने अधीन करना चाहता है। यदि सचमुच आप एक दूसरे से प्रेम करते हो, तो आपको एक दूसरे के हित की वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्या सचमुच आप ऐसा करते हो ? आप समझते हो कि मैं ऐसा करता हूँ, पर आपकी समझ में भूल है। भाई ! स्त्री या पति की इन्द्रिय-वासनाओं की तृप्ति करना उसे सुख पहुँचाना नहीं है, उसे सच्चा सुख देना नहीं है, कदापि नहीं। यदि सुख पैदा करने का यही एक उपाय होता, तो सभी परिवार सुखी होते। क्या ऐसा है ? क्या ये परिवार सुखी हैं ? हजारों में एक भी नहीं। वे सुखी क्यों नहीं

जो उपयोग करते हो, वह दूषित है, और वही अपने साथ रंज लाता है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थ में एक कथा है कि भारत के प्रसिद्ध देवता, भारत के प्रभु ईसामसीह, भगवान् कृष्ण को एक बड़ा दैत्य खाये जाता था। उन्होंने अपने हाथ में एक खंजर ले लिया। वे खा लिये और निगल लिये गये। अपने को अजगर के पेट में देखकर उन्होंने अजगर का हृदय बेध दिया। हृदय फट गया, अजगर घाव से मर गया, और भगवान् कृष्णचन्द्र बाहर निकल आये। ठीक यही मामला है। प्रेम क्या है? प्रेम कृष्ण है, अर्थात् प्रेम परमेश्वर है, प्रेम ईश्वर है, और वह हृदय में प्रवेश करता है, विषय-लोलुप मनुष्य के चित्त के भीतर वह पैठ जाता है, वह हृदय में घुस जाता है, और जब आसन जमा लेता है, जब हृदय के भीतर में उसे स्थान मिल जाता है, तब वह वार करता है। और, परिणाम क्या होता है? हृदय टूट जाता है, हृदय घायल हो जाते हैं। फल-स्वरूप व्यथा और शोक हाथ लगते हैं। सांसारिक प्रेमके हरएक मामले में रोना और दाँतों का पीसना ही होता है। यही रीति है। यही दैवी विधान है। यही घटना है। किसी भी सांसारिक पदार्थ से ज्यों ही आपने दिल लगाया, किसी भी लौकिक वस्तु को ज्यों ही आप उसके लिए प्यार करने लगे, त्यों ही कृष्ण भगवान् आपमें प्रवेश कर जाते हैं और आपको घायल कर देते हैं, हृदय फट जाता है, आप शोक-पीड़ित हो जाते हो, आप विलाप और रोदन करने लगते हो; "अरे, यह प्रेम बड़ा निष्ठुर है, इसने मुझे तबाह कर दिया।"

यह एक दैवी विधान है कि "इस दुनिया में जो कोई आदमी किसी व्यक्ति या दुनयवी चीज से अपना दिल

क्या वह मित्र अपना चित्र आपके पास छोड़ेगा ? नहीं, नहीं। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए दी थी कि आप उसे याद रक्खें। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए नहीं दी थी कि आप उसे भूल जायँ। वह चित्र आपका पूज्य नहीं होना चाहिए था। चित्र को चित्र की खातिर ही प्यार करने लगना बुतपरस्ती थी। आपको ईश्वर से प्यार करना था, आपको मालिक से, चित्र के स्वामी से प्यार करना था। इसी तरह, इस संसार में सब चीजें ईश्वर का चित्र, चिह्न-मात्र हैं। स्त्रियाँ और पति इन चित्रों के शिकार होते हैं। वे बुतपरस्ती का शिकार बनते हैं, और मूर्ति के गुलाम हो जाते हैं। आपकी इंजील आपको बताती है कि आपको कोई मूर्ति न स्थापित करना चाहिए, ईश्वर की प्रतिमा न बनाना चाहिए, और आपको मूर्ति-पूजा न करना चाहिए। मूर्ति-पूजा शब्द से यह मतलब नहीं था कि आपको इन प्रतिमाओं की उपासना न करना चाहिए। मतलब यह था कि ये जो जीती-जागती मूर्तियाँ हैं, इनके फेर में पड़कर असली को न भूल जाओ, यह अभिप्राय था।

भारत में एक क़ब्रिस्तान में राम ने एक क़ब्र पर एक अभिलेख देखा, जो इस प्रकार था:—

Here lies the babe that now is gone,
"An idol to my heart.
If so the wise God has justly done
'T was needful we should part."

"यहाँ वह बच्चा लेटा हुआ है, जो अब (परलोक) सिधार गया है, और जो मेरे हृदय-मन्दिर की प्रतिमा था। यदि ऐसा हुआ है, तो विज्ञ ईश्वर ने ठीक ही किया है, हमारा जुदा हो जाना जरूरी था।"

यह अभिलेख एक महिला ने लिखा था। वह उस बच्चे को बेहद चाहती थी। वह मूल से, उस असली से, जिसका चित्र-मात्र बच्चा था, बच्चे को अधिक मानने लगी थी, और इसलिए बच्चे का हरण उचित ही था। यही दैवी विधान है, यही नियम है। यदि आप चित्रों का ठीक उपयोग करोगे, तो वे आपके पास रहेंगे, यदि उनका दुरुपयोग करोगे, तो स्नेहभंग वा वियोग, रंज, चिन्ता और भय होगा। ठीक उपयोग करो। हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, किन्तु तभी, जब हम असली को अधिक प्यार करें, उसको चित्र से अधिक प्यार करें। केवल तभी हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, अन्यथा कदापि नहीं। यही दैवी विधान है। यही त्याग है।

इस ढंग से हरएक घर में संन्यास का अभ्यास किया जाना चाहिए।

है। चेतनता, उद्योग-शक्ति या गति किसके कारण से है? देखिये! आप मार्ग चल सकते हो, ढालू पहाड़ों पर चढ़ सकते हो, आप इधर-उधर विचर सकते हो, जहाँ चाहो जा सकते हो। किन्तु देहान्त होने पर क्या हो जाता है? प्राणान्त होने पर, वह चेतनता वा उद्योग-शक्ति, आपके भीतर का वह ईश्वर, जो आपको ऐसी-ऐसी ऊँचाइयों पर उठा ले जा-सकता था, पहले जैसी सहायता किया करता था, वैसी अब नहीं करता। तो फिर इस शरीर के अन्दर कौन है, जिसके कारण नसें डोलती हैं, बाल बढ़ते हैं, आपकी नाड़ियों में रक्त का सञ्चार होता है? वह कौन है? शरीर के अंगों को यह सब चाल, शक्ति, फुर्ती देनेवाला कौन है? वह कौन है? वह एक 'विश्वव्यापी शक्ति' है, एक 'विश्वेश्वर' है, जो आप वस्तुतः हो, वह 'आत्मा' है। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तब कुछ आदमियों को उसे स्मशान या क्रब्रिस्तान उठाकर ले जाना पड़ता है। और जब वह जिन्दा था तब वह कौन चीज थी जो उसका मनों भारी बोझ बड़ी-बड़ी ऊँचाइयों पर, ऐसे ऊँचे पहाड़ों पर उठा ले जाती थी? वह कोई अदृश्य, अवर्णनीय वस्तु है, परन्तु है अवश्य। वह आपके अन्दर आत्मदेव है, वह हरएक शरीर में परमात्मा है, और वही परमेश्वर हरएक वस्तु को शक्ति और कर्मण्यता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति की गति वा चेष्टा में शोभा का कारण भी वही परमेश्वर है। जब कोई मनुष्य सोया होता है, तब उसके नेत्र नहीं देखते, जब वह सोया होता है, तब उसके कान नहीं सुनते। जब मनुष्य मर जाता है, तब भी उसके नेत्र उसी के नहीं रहते हैं, पर वह देखता नहीं, उसके कान ज्यों के त्यों रहते हैं, पर वह सुनता नहीं। क्यों? [illegible]

राम कहता है, "अपने संगी के मांस-पिंड पर विश्वास न करो, भीतर के ईश्वर पर विश्वास करो।" इस बाहरी खाल और मांस को परदे के तुल्य जानो, और इसे आप अपने लिए पारदर्शी बना लो, तथा परदे के पार भीतर के ईश्वर ा देखो।

हमको पक्षी की तरह होना चाहिए कि जो एक क्षण ं किसी झूलती हुई फुनगी (डाली) पर उतर पड़ता है। उसे डाली के झुकने का बोध होता है, किन्तु निर्भय गाता रहता है, यह जानता हुआ कि उसके पंख हैं। डाली ऊपर-नीचे झूलती है, पर पक्षी भयभीत नहीं होता, क्योंकि यद्यपि वह डाली पर बैठा हुआ है, तथापि अपने परों के भरोसे है, ऐसा समझो। पक्षी जानता है कि वह डाली पर भरोसा नहीं कर रहा है, बल्कि अपने परों पर। यही ढं है। उसका भरोसा उस डाली पर नहीं है जिस पर वह बैठ हुआ है, वह अपने पंखों पर भरोसा करता है।

इसी तरह जहाँ कहीं आप हो, अपनी स्त्री औ बच्चों से कितने ही अनुरक्त क्यों न हो, किन्तु उनमें ि न लगाओ। हृदय को परमेश्वर के साथ रक्खो, दिल की अपने भीतर के परमात्मा से लगाये रहो। यही उपाय आप स्वयं [illegible] करो, और अपनी स्त्री तथा बच्च भी [illegible] करवाओ। आप उनसे मुक्त हो जा और वे [illegible] मुक्त होंगे [illegible] का नाम नहीं [illegible] स्वाधीनता [illegible] इस [illegible] अमरिका-[illegible] स्वा [illegible]

[illegible] चित्र [illegible] गया। [illegible] आसन ([illegible])

से साक्षीवत् हम इसे देखते हैं, तब हमें आनन्द आता है, तब यह अति रुचिर हो जाता है। इसी तरह अन्तर्गत परमेश्वर को प्राप्त करो। राम के सब व्याख्यान सुनो, धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आपको विश्वास हो जायगा। राम जिम्मा लेता है कि इस संसार का कोई भी व्यक्ति यदि राम के सब व्याख्यान सुन लेगा, तो उसके संशय दूर हो जायँगे, अपनी ईश्वरता में उसे अवश्य विश्वास हो जायगा। पहले अपनी दिव्यता तथा ईश्वरत्व में गहरा विश्वास (पक्का निश्चय) प्राप्त करो। इसे पा लो, फिर उस विधि से, वा उन उपायों से, जो बताये जायँगे, आप उस परमेश्वर में अपना केन्द्र जमाओ, वही हो जाओ, शाश्वत और सर्वशक्तिमान परमेश्वर अपने को अनुभव करो। "वही मैं हूँ, वही।" यह अनुभव करो और अपने सब घरेलू सम्बन्धों तथा इन सब मामलों को इस तरह देखो कि मानो वे एक तसवीर हैं, मानो तुमसे कोई लगाव ही नहीं है। यह विपरीत और स्वतः विरुद्ध जान पड़ता है। लोग कहते हैं कि यदि हम इन मामलों में न उलझें, तो कोई उन्नति कर ही नहीं सकते। अरे! आप भूल रहे हो। उन मामलों में फँसते ही आपकी उन्नति रुक जाती है। जब आप लिखते हो, तो लिखना अव्यक्तित्व (अकर्तृत्व) भाव से होता है। उस समय आपका अहं-भाव, आपका तुच्छ अहंकार, मिथ्या अहंकार बिलकुल गैरहाजिर होता है; और अनायास यंत्रवत् काम किया जा रहा [illegible] यह एक प्रकार से [illegible] क्रिया रूप कर्म है, हाथ अपने आप [illegible] जा रहा है [illegible] आप अपने तुच्छ अहंकार [illegible] ही आप अपने [illegible] मैंने [illegible] लिखा है, मैंने [illegible] आप भूल कर बैठोगे।

इस तरह हम [illegible] केवल तभी होता है,

दैवी विधान यह है कि मन तो शान्त, स्थिर और अचञ्चल हो, और शरीर सदा कर्मण्य रहे। चित्त तो स्थिति-शास्त्र (स्टेटिक्स, Statics) के नियमाधीन रहे, और देह गति-शास्त्र (डाइनेमिक्स, Dynamics) के नियमाधीन हो। बाह्य शरीर काम करता रहे और भीतरी अपना आप सदा स्थिर रहे, यही दैवी विधान है। स्वाधीन बनो। वस्तुओं को ठीक उसी तरह कोमलता से स्थित रहने दो, जिस तरह नयनगोचरीभूत भूप्रदेश [Landscape] नयनों पर स्थित रहा करता है। दृष्टिगोचर भूप्रदेश नेत्रों पर सचमुच, पूरी तरह, समग्रता से, अवस्थान करता है, किन्तु अति कोमलता से। वह नेत्रों पर बोझ नहीं डालता। सम्पूर्ण भूभाग (Landscape) का अवस्थान नेत्रों पर है, किन्तु नेत्र स्वाधीन हैं, भार से दबे नहीं हैं। अपने घरेलू मामलों में, अपने पारिवारिक या सांसारिक जीवन में आपकी स्थिति भी ठीक ऐसी ही होनी चाहिए। आप इन सब व्यापारों को देखो और निर्लिप्त बने रहो, स्वतंत्र रहो। और यह स्वाधीनता मिल सकती है केवल सच्चे आत्मज्ञान के द्वारा, पूर्ण तत्त्व के अनुभव द्वारा, जिसे वेदान्त कहते हैं। सच्चे आत्मदेव का अनुभव करो, और सब नक्षत्र तथा तारागण आपकी आज्ञा पालेंगे।

सूर्यो और नक्षत्रो या भूमियो और समुद्रो !
चक्कर देते रहो मेरे स्वप्न की प्रतिच्छाया को,
मैं चलता हूँ, मैं फिरता हूँ, मैं आता हूँ, मैं जाता हूँ।

गति, गतिमान् और गतिकारक मैं (हूँ)।
न विश्राम, न गति है मेरी या तेरी।
कोई शब्द मुझे कदापि वर्णन नहीं कर सकता।

चमको, चमको, छोटे तारो !
चमकते हुए, पलकते हुए, संकेत करो, मुझे पुकारो।
उत्तर पहले दो, ऐ सुन्दर तारो !
कहाँ के लिए संकेत तुम्हारा, कहाँ मुझे बुलाते हो ?
तुम्हारे नयनों की प्रभा हूँ,
तुम में जो जीवन वह मैं हूँ।

यह है तुम्हारा सच्चा स्वरूप। तुम वास्तव में जो कुछ हो, वह यह है। यह अनुभव करो और मुक्त हो। यह अनुभव करो और तुम विश्व के स्वामी हो जाते हो। यह अनुभव करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे उद्यम के सब मामले, तुम्हारे सब व्यापार आप-से-आप, अत्यन्त वांछनीय रूप में तुम्हारे

गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव ।

(ता० १ फ़रवरी १९०३, रविवार, सन्ध्या-समय)

"क्या कोई विवाहित मनुष्य (गृहस्थ) आत्म-साक्षात्कार की अभिलाषा कर सकता है ?"* यह प्रश्न कुछ समय पहिले राम से पूछा गया था और उसका पूर्ण उत्तर भी उस समय दिया गया था।

राम आज उसी विषय को नहीं छेड़ेगा, किन्तु उसी के समान अन्य विषय पर बोलेगा।

उस प्रश्न के उत्तर में कामनाओं के स्वरूप का निरूपण दिया गया था। अर्थात् "कामना क्या वस्तु है; और मनोरथ मनुष्य के स्वभाव पर क्या प्रभाव डालते हैं ? कामनाओं की पूर्ति से क्योंकर सुख और अपूर्ति से क्योंकर दुःख होता है ?" आदि प्रश्नों का विचार किया गया था। यह प्रश्न बहुत बड़ा और जटिल है, और इस पर राम ने बहुत गंभीरता-पूर्वक विचार भी किया है। राम के अनुसंधानों का फल "मनोवेग शास्त्र (Dynamics of mind)"† नामी ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जावेगा।

"क्या अपने पुत्र, कलत्र, स्नेही, सम्बन्धियों में रहनेवाला गृहस्थ वा दूसरे शब्दों में एक साधारण सांसारिक मनुष्य

की शैली ऐसी थी कि गंभीर-से-गंभीर मनुष्य भी उससे खिल्ला उठता। पर वह धर्मात्मा मालिक उस नौकर पर कभी क्रुद्ध न होता, उल्टे वह उस दुष्ट के साथ अति प्रेम का बर्ताव करता। एक समय उसके एक अतिथि ने उस नौकर के विरुद्ध बहुत-सी शिकायत की। वह उसके कामों से बहुत खिन्न और क्रुद्ध हुआ था, और उसके मालिक को उसे निकाल देने को कहा। पर मालिक ने उत्तर दिया—"आपकी सलाह अत्युत्तम है, और आपने शुभेच्छा-पूर्वक यह सम्मति दी है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे शुभ-चिन्तक हैं और मेरे कार्य्य को वृद्धि चाहते हैं, जिससे हेतु यह सम्मति देते हैं। पर मैं इस बात को अधिक जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा काम-काज खराब हो रहा है। इससे मेरे व्यापार को हानि पहुँच रही है। किन्तु मैं उसे इसीलिये रखता हूँ कि वह इतना अनाज्ञाकारी वा अविश्वासी है। यह उसका दुष्ट आचरण और खराब स्वभाव है, जिससे वह मुझे इतना प्रिय हो रहा है। वह पापी, दुष्ट और नमकहराम है, इसी से मैं उसे अधिक प्यार करता हूँ।" उसका ऐसा कहना बड़ा ही आश्चर्य-जनक था।

ओर ले जाने के स्थान पर सम्पूर्ण शरीर को अपने साथ ले जा सकते हो, आप अपने पुत्र-कलत्र को, मानो अपने दिल-दिमाग और हाथ-पैरों को, साथ ले जा सकते हो।

इस तरह परमात्मा के साथ अभेदता और एकता अनुभव करने के पूर्व आप अपनी स्त्री और पुत्र के साथ एकता अनुभव करो। जिस मनुष्य ने अपनी अर्धांगिनी और पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव नहीं की, वह सबके साथ अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकता है?

वेदान्त की दृष्टि में स्वाभाविक मार्ग तो यही है कि जिसके साथ आपका सम्बन्ध हो, उसी के साथ एकता अनुभव करना आरंभ करो। आपके जो प्रियतम हों, उन्हीं में आप अपने को लीन कर दो। अपने हित को उनके हित में लीन कर दो। सब शरीरों को मिलाकर एक कर दो। सबों को मिलकर एक धारा-प्रवाह बन जाने दो, और फिर अनुभव-पर-अनुभव प्राप्त करते जाओ। तदनन्तर दूसरे परिवारों को लो और क्रमशः उन्नति करते हुए सब परिवारों को अपना शरीर बना लो। जब आप सब व्यक्तियों को अपना शरीर समझ लोगे, तब आप परमात्मा के साथ एकता अनुभव कर सकोगे, तब आप प्रत्येक को अपने साथ ले जा सकोगे।

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक (बाइबिल) में शिष्य सेंट जोह्न ([illegible]) के सम्बन्ध में हम पढ़ते हैं कि उनसे हजरत ईसा प्रेम करते थे। ईसा समस्त संसार से प्रेम करते थे। "शिष्य से ईसा ने प्रेम किया।" इस कथन को थोड़ा बदल देने से यों हो जाता है कि शिष्य ने ईसा से प्रेम किया। इससे [illegible] सिद्धान्त [illegible] मुक्ति का मूलसूत्र मिल जाता है।

"आधार-प्रत्याधार बराबर और परस्पर विरोधी होते

आपको याद होगा कि आत्मानुभव वा तत्त्व-साक्षात्कार की यह पहली सीढ़ी है। यह समस्त जगत् हो जाना है, फिर दूसरी सीढ़ी उस (जगत्रूप) से ऊपर उठना है। एक दिन राम ने अपने व्याख्यान में दो प्रकार के अध्यासों का वर्णन किया था—एक स्वरूपाध्यास और दूसरा संसर्गाध्यास।

स्वरूपाध्यास के कारण नाना व्यक्तित्व एवं उनमें परस्पर भेद-भाव की कल्पना उत्पन्न हो आती है, और इसी से वह अन्धापन व अन्धकार उत्पन्न हो आता है कि जिससे मनुष्य को प्रत्येक में ईश्वर देखना नहीं मिलता। यही उस मानसिक व्याधि का हेतु है, जो आपको विश्व के सब पदार्थों में एकत्व का अनुभव करने नहीं देती। संसर्गाध्यास वाह्य विषमता है, नाम-रूप का भ्रम है।

इस प्रकार सांसारिक मनुष्य में इन दोनों प्रकार के अध्यासों को दूर करना होगा। सबसे पहिले तो समस्त वस्तुओं (व्यक्तियों) में एकता का अनुभव करना आवश्यक है। जिस मनुष्य को इन दोनों प्रकार के अध्यासों को जीतना व दूर करना होता है, उसे पहिले अपने को ही समस्त विश्व के प्रत्येक पदार्थ का आत्मा अनुभव करना होता है। वह अपनी आत्मा को ही जगत् के सारे मनुष्यवर्ग, सारे वनस्पतिवर्ग, समस्त वृक्ष, सरिता, कीट, पतंग आदि की आत्मा समझता और अनुभव करता है। अनुभव की यह एक अवस्था है। ऐसे मनुष्य को आरंभिक अवस्था में अपने पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव करने से सहायता मिलती है। जब वह सारे संसार के साथ अपनी एकता (अभेदता) अनुभव करता है, तो यह अनुभव की पहिली अवस्था है। दूसरी अवस्था वह है, जब कि सभी नाम-रूप और आकार अन्तर्धान हो जाते हैं, जहाँ यह माया समूल नष्ट हो जाती है, और तब सारे संसार

अपनी एकता अनुभव करने लगते हो, और फिर धीरे-धीरे समस्त देश के साथ एवं समस्त जगत् तथा विश्व के साथ उत्तरोत्तर एकता अनुभव करते हो। यह बहुत कठिन काम मालूम होता है, पर वास्तव में यह बहुत कठिन है नहीं। आरंभ करना कठिन है, पर कुछ ही काल बाद प्रगति (progress) तीव्र हो जाती है। जब एक बार कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ अपनी अभेदता अनुभव कर लेता है, तथा दूसरे में मानों विलीन हो जाता है, तब वह प्रत्येक के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगता है। अनुभव से यहाँ यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के अटल नियमानुसार जगत् में जो कुछ प्रीति है, वह हमको बलात्कार ऐसी स्थिति में ले जाती है कि जहाँ हमारा प्रेम-पात्र बाह्य जगत् का विषय नहीं रहता, जहाँ हमारा प्रेम बाह्य रंग-रूप-आकृति वा लिंग चिह्नों पर नहीं टिकता, वरन् जहाँ प्रेम अधिकाधिक अन्तरात्मा, सर्वाधार सत्ता पर हो जाता है

[illegible]

क्राइस्ट की अवस्था में कुछ काल रहने के बाद दूसरी इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब हम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। जब हम इस तरह समाधि, पूर्णतया एकता, निमग्नता वा लय की अवस्था में होते हैं, तो वह परमात्म-अवस्था है। इसको हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते हैं, ऐसी अवस्था में अन्तःकरण में न कोई स्फुरण होता है, न क्षोभ और न विरोध।

उस स्थिति में क्रमशः पहुँचने के लिए हम अपने सांसारिक कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों से किस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकते हैं?

भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं, जो रोमन कैथोलिकों की तरह ईश्वरोपासना करते हैं, जो ईश्वर-पूजन प्रतिमाओं द्वारा करते हैं। ईश्वर, राम वा कृष्ण की प्रतिमा को (अधिकतर)

पहनना पड़ता था, उन्होंने ही संसार के लिये इतना उपकार किया है। भारतवर्ष के हिन्दू लोग पहिले जंगली कन्द-मूल पर ही गुज़ारा करते थे, पर इन्हीं लोगों ने जगत् को सर्व-श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान, वेदान्त (मोक्ष और भक्ति का दर्शन-शास्त्र) प्रदान किया है।

अपने को श्रेष्ठ और सत्पुरुष बनाने का प्रयत्न करो। भव्य भवन और सुन्दर सदन बनाने में अपनी शक्ति मत ख़र्चो। अपने विचार नष्ट न करो। बहुतेरे गृह बड़े ऊँचे और आलीशान हैं, पर उनमें रहनेवाले मनुष्य बिल्कुल ही ठिगने और क्षुद्र हैं, भारत में अनेक विशाल क़ब्रें हैं, पर जानते हो, उनके भीतर क्या है? केवल सड़ी लाशें, रींगनेवाले कीड़े और साँप।

बड़े-बड़े मकान बनाने और उनमें चमकदार चीज़ों के सजाने में अपनी शक्ति का नाश कर अपने को, अपनी पत्नी और अपने मित्रों को बड़ा बनाने का यत्न मत करो। यदि आप इस विचार को ग्रहण कर लोगे, इसे हृदयंगम कर लोगे, इसे जान और समझ लोगे कि जीवन का एकमात्र आदर्श और उद्देश्य शक्ति का दुरुपयोग और धन का संचय करना नहीं है, वरन् भीतरी शक्तियों का विकास करना, ईश्वरत्व और मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म-शिक्षण करना है। यदि आप इसका अनुभव करके इसी ओर अपनी सारी शक्तियों को लगाओगे, तो पारिवारिक बन्धन कभी आपके लिए विघ्न रूप न होंगे।

कुछ लोग कहते हैं, हम तो सादी रीति से रह सकते हैं, पर हमारे मेहमान भी तो हैं। यदि हम लोग कमख़र्च आदि अख़्तियार करें, तो वे क्या कहेंगे।

हे मेरे प्यारे! तुम अपने लिए जीते हो, या दूसरों के

लिए ? अपने लिए जीओ । तुम्हारे जीवन में दूसरों को दख़ल देने की आवश्यकता नहीं है । अपना भोजन करते समय तुम भोजन करते हो या वे ? तुम अपना खाना आप पचाते हो वा तुम्हारे लिए वे पचाते हैं ? देखते समय तुम्हारी अपनी आँखों के स्नायु तुम्हें सहायता देते हैं, या उनकी आँखों के ? अपने गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र (centre of gravity) तुम आप बनो । स्वाश्रयी हो। ज़रा अपने भीतर के आधार वा अधिष्ठान को पा लो, और मेहमानों के मत वा विचारों की परवाह मत करो। भोजनों और बिछावनों को अतिथि-सत्कार का मूल-मंत्र न बनाओ। लोग समझते हैं कि मेहमानों को स्वादिष्ट भोजन और सुन्दर पलंग नहीं देंगे, तो हम पूरे अतिथि-सेवी न होंगे। इस प्रकार घर का स्वामी इन चीज़ों का एक अनुबंध (appendage)-मात्र रह जाता है। कृपा करके अपने को द्रव्य का उपकरण (appendage) न बनाओ, द्रव्य को ही अपना उपकरण बनाओ, अपनी शक्तियों का अनुभव करो।

ऐसा करो कि जब तुम्हारा मेहमान (अतिथि) तुम्हारे यहाँ से अपने घर को जाने लगे, तो वह स्वच्छ चित्त, उदित और समुन्नत होकर जाए। यह योजना करो कि जैसा वह अपने घर से आया है, उससे अधिक बुद्धिमान बनकर जाए। अपने स्वजनों के प्रति अपना यही कर्तव्य समझो। अपने परिवार को सुखी करने का यही मार्ग है । इसी तरीक़े से गृहस्थी अपने कुटुम्ब को विघ्न-बाधा के स्थान पर उन्नति का सोपान बना सकता है । यदि तुम्हारा अतिथि पहिले की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् होकर लौटता है, तो उसके खाने-पीने की अधिक परवाह न करो। उसे इनसे कुछ श्रेष्ठतर चीज़ दो; उसे ज्ञान और बुद्धि दो। उसे आपकी प्रीति का

आनन्द लूटने दो। याद रक्खो कि यदि मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूं, कुछ भी शारीरिक सेवा न करूं, केवल प्यार से, सच्चे और साफ दिल से तुम्हारे प्रति प्रसन्नता-भरी हँसी (Smile) दूं, तो तुम्हारा प्रफुल्लित होना, समुन्नत होना और उछलना अनिवार्य है। इतने से ही तुम्हारी बड़ी सेवा हो जाती है। किसी मनुष्य को धन देना कुछ नहीं है, यह वैसा है कि पहिले पत्नी को धन देकर पीछे से त्याग देना। पत्नी को धन नहीं चाहिए, उसे प्रीति चाहिए। किसी मनुष्य को धन देकर तुम पातकी का-सा आचरण करते हो। तुम उसे धोखा देकर भुलाया चाहते हो। उसे प्रेम और ज्ञान दो, उसे स्वच्छ चित्त और समुन्नत बनाओ। यह भारी अतिथि-सत्कार है, और यही तुम्हें करना चाहिये। ऐसी ही प्रीति तुम्हें अपनी स्त्री और बच्चों के साथ रखनी चाहिये।

कितने पाप और भूलें करुणा के नाम से की जाती हैं? साथी को सुख देने (Congeniality) की इच्छा से कितनी भूलें हुआ करती हैं?

एक मनुष्य की कुछ ऐसे नवयुवकों की संगति हो गई कि जो खाना-पीना और मौज उड़ाना पसन्द करते थे। अस्तु, नौजवानों की टोली में से एक कहता है कि मद्य पी जाय। दूसरे साथी राजी हो जाते हैं, और यह नया (अजनबी) आदमी अच्छा साथी (संगी) बनने की इच्छा का शिकार होता है, और केवल उन्हें (अपने साथियों को) ख़ुश करने के लिए शराब पीना शुरू करता है। उसकी अपनी इच्छा मद्य-पान की नहीं है, किन्तु अपने सहचरों (संगियों) को ख़ुश करने के लिए वह उनका अनुकरण करता है। उसमें दूसरों को प्रसन्न करने की अभिलाषा है, और यह इच्छा ही उसे शराब पिलाती है। दूसरी बार यही सज्जन वैसी ही संगति में पड़ जाता है, और दूसरों को केवल प्रसन्न करने की इच्छा से शराब पीने को फिर प्रलोभित होता है। और समय-समय पर ऐसा ही करते-करते एक वह समय आ जाता है कि जब मद्य-पान के व्यसन का वह तुच्छ दास बन जाता है।

इसी तरह, केवल दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से नारियाँ भी वह काम करती हैं, जो धीरे-धीरे उन्हें किन्हीं दुर्व्यसनों की दासी बना देता है। इसलिए वेदान्त कहता है कि दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा वास्तव में अज्ञान, दुर्बलता और मिथ्याभिमान के योग के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करने की नीयत (उद्देश्य) से कभी कुछ मत करो। जो 'नहीं' कह सकता है, वह वीर है। 'नहीं' कहने की अपनी सामर्थ्य से आपका चरित्र-बल और बहादुरी प्रकट होती है।

अब दया के सम्बन्ध में लीजिये। केवल यह समझते हुए कि दूसरों के भावों का उन्हें आदर करना चाहिए, कितने लोग अपने को नरक में रखते हैं ? राम जो कह रहा है, उसे आप चाहे दारुण वा घोर पापिष्ट क़ानून कह लें, किन्तु यह वह क़ानून है, जिसका गुण आप एक दिन अनुभव करेंगे।

ज़रा ख़याल तो कीजिए कि इस संसार में कितने लोग केवल इसीलिए नरक भोग रहे हैं कि वे दयावान् हैं; सम्बन्धियों या सुहृज्जनों के विरुद्ध होने के कारण अथवा किसी मनुष्य का हृदय टूट जाने के भय से वे सत्य का अनुसरण करना या सत्य की आज्ञानुसार बरताव करना निर्दयता समझते हैं।

वेदान्त कहता है, आप सत्य पर इसीलिए आपत्ति करते हो कि उससे किसी का दिल टूट जायगा, तो सत्य की हत्या होने की अपेक्षा किसी व्यक्ति की मृत्यु बेहतर है। वेदान्त कहता है, "इस या उस व्यक्ति के भावों की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो", क्योंकि सत्य का आदर करना वास्तव में मित्र की क़दर करना है। उसके मिथ्याभिमान या इच्छाओं का जितना ही अधिक आदर या ध्यान करोगे, उतनी ही अधिक चेष्टा आप कर रहे हो उसके सच्चे आत्मा के वध की, जो 'सत्य' स्वरूप है। "उसके बाह्य शरीर की अपेक्षा 'सत्य' का अधिक आदर करो।"

पुनः कितने लोग ऐसे हैं, जो आत्म-सम्मान की इस कल्पना के कारण अपने लिए नरक की सृष्टि रच रहे हैं? कैसा घोर अनर्थ समझा जाता है। 'आत्म-सम्मान' से लोग इस तुच्छ शरीर का, इस क्षुद्र व्यक्तित्व का, 'आत्म-सम्मान' समझते हैं।

माताओं, बहनों, पिताओं, भाइयों और बच्चों के रूप में ऐ परमात्मस्वरूप ! ऐ परमेश्वर ! तू देख कि आत्म-सम्मान का

अर्थ इन तुच्छ शरीरों या व्यक्तित्व का सम्मान नहीं है, समझ ले कि आत्म-सम्मान का अर्थ है 'सत्य' का सम्मान, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का सम्मान। जिस प्रकार के 'आत्म-सम्मान' को तुम उत्तेजना दे रहे हो, उससे 'आत्म-सम्मान' की ओट में तुम अपने सच्चे 'आत्मा' का अपमान करते हो।

जब आप ईश्वर-भावना से परिपूर्ण हो जाते हो, तब आप अपने आत्मा (स्वरूप) का सम्मान करते हो; जब आप अन्तर्गत ईश्वर के ध्यान से परिपूर्ण होते हो, तब आप आत्म-सम्मान से परिपूर्ण हो। देह की पूजा के द्वारा आप आत्महत्या कर रहे हो, आप अपने लिए गड्ढा खोद रहे हो।

मांस के विषय में वेदान्त कहता है, "अपने शरीरों से लग्न न लगाओ, अपने शरीर के मरने या जीने की चिन्ता न करो, आपके शरीर को लोग पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं, इसकी परवाह न करो। इससे ऊपर उठो।"

एक मनुष्य इस शरीर को वस्त्र पहनाता है और दूसरा उन्हें फाड़ डालता है, इसकी कोई परवाह न होनी चहिए।

"जब कि स्तुतिकर्त्ता और स्तुत्य, या निंदक और निंद्य (वास्तव में) एक ही हैं, तो न निन्दा है न स्तुति।"

इस दशा में, यदि आप अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करें, यदि इस क्षुद्र शरीर का ज्ञान आपके लिए मिथ्या हो जाय, तो जहाँ तक आपका सम्बन्ध है, दूसरों के बाहरी मांस और खून का आदर गायब हो जायगा।

आज राम आपके कुछ अति प्रिय अन्ध-विश्वासों को चकना-चूर कर देगा।

वेदान्त कहता है, "दूसरी मूर्तियों को आप उसी अंश तक सच्ची समझ सकते हो, जिस अंश तक आप अपनी देह-रूपी प्रतिमा को असली समझते हो।" यह नियम है। दूसरों

है, उसमें विकार हो ही नहीं सकता, वह निर्विकार और निर्विकल्प है। और उन्होंने उससे कहा, "अर्जुन, तू मर नहीं सकता। इन देहों में से चाहे किसी को भी मिटा दे, पर उसका असली स्वरूप (आत्मा) कभी नहीं मरता। तुम कभी नहीं मरते। और यदि तुम्हें पूर्ण सत्य का बोध भी नहीं, तथा आवागमन की चार दीवारी में ही तुम क़ैद हो, तब भी जान लो कि अपना या उनका व्यक्तित्व सत्य नहीं है, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करो, जो परमेश्वर है, और जो अमर है। तुम काँपते और थर्राते क्यों हो ? अपने उपस्थित कर्तव्य को देखो। यदि इस समय तुम्हारा सांसारिक कर्तव्य इन सब मनुष्यों का वध करना है, तो इन्हें मार डालो।" भगवान् कृष्ण उससे कहते हैं, "मैं देवों का 'परमदेव' हूँ, प्रकाशों का 'प्रकाश' हूँ, और क्या प्रतिक्षण मैं कोटियों पक्षी-पशुओं का नाश नहीं कर रहा हूँ ? उन्हें शून्यता में नहीं फेंक रहा हूँ ? मैं—'प्रकृति', परमेश्वर, जगन्नियन्ता—सदा ये काम कर रहा हूँ, फिर भी मैं सदा निर्लिप्त और निर्मल हूँ। ईश्वर नाश करता है, तो क्या ईश्वर दोषी है ? नहीं, ईश्वर फिर भी शुद्ध है।" फिर भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि तुम सत्य का अनुभव करो, यदि तुम परमेश्वर से अभेद हो जाओ, यदि तुम अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करो, तो तुम्हारी देह परमात्मा का यंत्रमात्र बन जाय। यदि न्याय, धर्म, सत्य और अधिकार के लिए तुम्हारा शरीर लाखों और करोड़ों का संहार भी कर दे, तो भी तुम शुद्ध, अविकल और निष्कलंक रहते हो।"

यह सत्य लोगों को अनुभव करना होगा। किन्तु आप इसका अनुभव करो या न करो, राम को सत्य कहने से रुकना उचित नहीं।

वह वेदान्त था, जिसने नर-संहार करने में, बल्कि अर्जुन के अपने बहुत नगीची और प्रियतम सम्बन्धियों का तथा अपने गुरु, चचा, भाई, बन्धुओं का नाश करने में कोई आगा-पीछा नहीं किया था। वेदान्त कहता है, इनके वध करने से अर्जुन दूषित नहीं हुआ। तो फिर बकरों या भेड़ों, बैलों या कोई भी पशुओं को मारने में वेदान्त कैसे संकोच कर सकता है? पर फिर भी वेदान्त मांस से परहेज करने को आपसे कहता है, पर बिल्कुल अन्य कारणों से।

मांसाहार आपको उस दशा या अवस्था में पहुँचा देता है, जिसमें आप चित्त को आसानी से एकाग्र नहीं कर सकते। यदि मांस-भक्षण आप छोड़ नहीं सकते, यदि इस आदत को आप जीत नहीं सकते, तो वेदान्त कहता है, "खाओ, मत छोड़ो।" विभिन्न खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न असर पैदा करते हैं। मद्य पीने से मनुष्य को नशा होता है। अफ़ीम खाई जाने पर एक ख़ास तरह का असर पैदा होता है। एक मनुष्य संखिया खाता है और उसका एक विशेष प्रभाव होता है। इसी तरह भोजन विशेष भी अपना ख़ास असर पैदा करता है। और मांस भी ऐसा ही करता है। मांस शरीर पर जो असर डालता है, उस (असर) की धर्म के विद्यार्थियों को आवश्यकता नहीं है।

यदि आप सैनिक हो, अथवा उद्यम-पूर्ण कृत्यों के पुरुष हो, तो वेदान्त कहता है, आपको मांस खाना चाहिए, क्योंकि आपको उसकी जरूरत है, और आपको केवल शाक आदि भोजन पर न बसर करना चाहिए। दूसरी वृत्तियों के लोगों के बारे में राम कहता है, अपनी-अपनी प्रकृति पर उसे आजमाकर देखो। कुछ लोगों के लिए वह हितकर है, और कुछ के लिए हानिकर। प्रकृति की योजना (plan) है कि

था। इस रमणी ने एक मातहत कर्मचारी को अपना दिल दे दिया था। मातहत पदाधिकारी छुट्टी लेकर घर गया। रमणी भी मौक़े से लाभ उठाकर उसके घर पहुँची। विवाह की ठहर गई, और इसलिये उसने अपनी छुट्टी बढ़वाना जरूरी समझा। छुट्टी बढ़ाने को उसने अपने ऊपर के अफ़सर को तार दिया। अफ़सर को सब हाल मालूम हो गया और वह जान गया कि रमणी से ब्याह करने के लिए छुट्टी माँगी गई है। वह अफ़सर ईर्ष्यालु था और छुट्टी नहीं देना चाहता था। जवाब में उसने जल्दी से दुटप्पी (संक्षिप्त) भाषा में यह संदेश भेजा, "तुरन्त मिल जाओ (Join at once)।" उसका मतलब था कि मातहत पदाधिकारी तुरन्त आकर सेवा में सम्मिलित हो। यह मनुष्य वह संदेश पढ़ रहा था, जिसमें कहा गया था "तुरन्त सम्मिलित हो" और वह बहुत चाहता था कि घर पर ठहरूँ, किन्तु सन्देश कहता था "तुरन्त सम्मेलन करो।" उसे इस बात से बड़ी निराशा और व्यग्रता हुई। जब उसके चित्त की यह हालत थी, तब रमणी आई और उसे इतना निराश देख कर कारण पूछने लगी। उसने उसे तार दिखाया। रमणी की चपल मति ने संदेश का अपने अनुकूल अर्थ लगाने में उसे सहायता दी, और उसने संदेश का बड़ा ही प्रसन्नकारी अर्थ लगाया, तथा ख़ुशी से नाचने लगी। उसने उस (प्रेमी) से पूछा कि इतने उदास क्यों हो, तुम्हें तो मेरी समझ से प्रफुल्लित होना चाहिए। वह कमरे से निकलने को थी, तब उसने (प्रेमी ने) पूछा, जाने की इतनी जल्दी क्यों है? रमणी ने उत्तर दिया, 'जल्दी से विवाह होने की तैयारी करने के लिए।' इस तरह लोग अपनेमतलब से अपना मतलब निकाल लिया करते हैं। ऐसा अर्थ विचार करने को उद्यत

प्रश्न किया "ईश्वर के कान कहाँ हैं?" यही खैरियत है, वे इस वचन की और भी अधिक स्थूल व्याख्या नहीं करते, जो व्याख्या की जा चुकी है, वही काफ़ी स्थूल है।

यदि देह ईश्वर का आलय (मन्दिर) है, तो आपको देह भूल जाना चाहिए, देह भूल जाने ही के लिए है। मन्दिर का अच्छा उपयोग उसे भुला देना ही है, न कि सब तरह की निधियों से उसे परिष्कृत करना और लादना। अन्दर के ईश्वर का अनुभव करो, मन्दिर अपनी चिन्ता आप कर लेगा।

क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है? क्या ईश्वर का मन्दिर सर्वत्र नहीं है? सूर्य परमेश्वर का मन्दिर है। क्या सब नक्षत्र परमेश्वर के मन्दिर नहीं? हरएक वस्तु परमेश्वर का मन्दिर है। राम कहता है, प्रत्येक पदार्थ ईश्वर का मन्दिर है। देह ईश्वर का मन्दिर इसलिए है कि वह आपसे अत्यन्त निकट है।

प्रत्येक पदार्थ आपको परमेश्वर की शिक्षा देता है। प्रत्येक पदार्थ का मूल परमेश्वर है। इस सम्बन्ध में राम आपसे एक बात कहना चाहता है मानसिक पीड़ा, आन्तरिक शूल, चिन्ता या क्लेश से ग्रस्त सब लोगों को वह वैकुण्ठ का एक संदेश देना चाहता है

समस्त विश्व के इतिहास के पन्नों में ईश्वर ने यह सन्देश भेजा है ईश्वर यह सन्देश तुम्हारी नाड़ियों में, तुम्हारी स्नायुओं में, तुम्हारे मस्तिष्क में भेजता है, प्रत्येक कुटुम्ब में, हरएक परिवार में, भगवान इस सन्देश का प्रचार कर रहा है। इस सन्देश को सुनो, इस पर ध्यान दो, और अपना उद्धार कर लो। यदि इस सन्देश पर ध्यान न दिया, इसका अनादर किया, तो अपने को फाँसी पर चढ़ा लोगे, मरोगे, नष्ट होगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

के इस रोग से, मिथ्याभिमान के इस रोग से, देह निमित्त प्रेम के इस रोग से, दूसरों की देह के लिए इस प्रेम से, इस बद्धमूल रोग से, इस अज्ञान से जो तुम्हें शरीर में आत्मा का विश्वास कराता है और जिसके कारण तुम देह को अपने अन्दर का सार पदार्थ समझने की भूल करते हो, इस अज्ञान से जो अपने को पूजा जाने की लालसा में बदल लेता है, हरएक व्यक्ति संसार में व्यथा पा रहा है। बिना उचित मूल्य दिये इस रोग का, पूज्य होने की इस कल्पना का, आनन्द नहीं लूटा जा सकता। परमेश्वर का यह दैवी विधान किसी को माफ़ नहीं करता, न तो ईसा को छोड़ता है और न कृष्ण को। ईसा को क़ीमत देना पड़ी थी, पहले सूली मिली और पीछे वह पूजा गया। क़ानून के अनुसार सुक़रात ने पहले मूल्य दिया, और पीछे वह पूजा गया।

सब सिद्धों ने पहले मूल्य दिया और पीछे वे पूजे गये। तुम्हारे नेपोलियन, वाशिंगटन और अन्य महापुरुषों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजे गये। न्यूटन और अन्य महापुरुष क़ब्र में जी रहे हैं, अब वे क़ब्रों में उन जीवनों को बिता रहे हैं, जो पहले बलिदान (crucifixion) के जीवन थे। वे शरीर से (अर्थात् देह-दृष्टि से) ऊपर हैं, भूख और प्यास की पीड़ाओं से परे हैं।

न्यूटन का जीवन-चरित्र पढ़ो, और तुम देखोगे कि अनेक बार वह भोजन करना भूल गया। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजा पाई।

क़ानून (दैवी विधान) किसी को नहीं छोड़ता, वह व्यक्तियों का आदर नहीं करता, वह तुम्हारे पापियों या पुण्यदानों (साधुओं), तुम्हारे सिद्धों या तत्त्वज्ञानियों का लिहाज़ (पक्ष) नहीं करता। यह निष्ठुर और निर्दयी क़ानून (विधान

कामनायें, जो आप में हैं, उनकी तृप्ति के लिए उन्हें दूर कर देना चाहिए। कामनाओं से ऊपर उठो; व्यक्तित्व से, इस तुच्छ देह से ऊपर उठो।

यह एक दीपक है। पतंगों को दीपक भाता है, वे उसे प्यार करते हैं, और वे आते तथा अपनी देहों को उसके लिए भस्म कर देते हैं। एशिया में इस जल जाने को प्रेम का एक चिह्न समझा जाता है, और लोग कहते हैं, "ये पतंगे दीपक से इतना प्रेम करते हैं कि अपने को जला देते हैं।"

वेदान्त कहता है, "नहीं, नहीं, पहले दीपक अपने को जलाता है, और तत्पश्चात् प्यार किया जाता है।"

इसी तरह शरीर से ऊपर उठो, अपने इस व्यक्तित्व को जला दो, इसका दाह करो, इसे नष्ट करो, इसे भस्म कर दो, केवल तभी तुम अपनी इच्छाओं को पूरा होते देखोगे; तब तुम्हें पूजा जायगा, तब तुम्हारी कामना के पदार्थ तुम्हारी उपासना करेंगे। दूसरे शब्दों में, 'अपना अहंकार त्यागो।' यह कहना सहज है, किन्तु इसे अमल में लाना चाहिए।

[illegible] तुम्हारा सामना ईश्वर से समान नहीं [illegible] करने से ही तुम ईश्वर [illegible] ईश्वर को [illegible] जीवन के [illegible] [illegible]

[illegible] सिद्धांत [illegible] होता [illegible] बुद्धि में [illegible]

यही था कि विभिन्न नियमों को राम ने यहाँ तक याद किया था कि वे उसकी उँगलियों के पोरों पर मौजूद रहते थे। राम का अभ्यास इतना बढ़ा-चढ़ा था कि उदाहरणार्थ १८ अंकों के गुण्यांक (digits) और १७ अंकों के गुणक का गुणन-फल राम तुरन्त एक क्षण में बता देता था। क्योंकर? अभ्यास की बदौलत। इस तरह तुम्हारा भगवत्-मन्दिर केवल तुम्हारे हृदय में न होना चाहिए। वेदान्त का मन्दिर तो दुकान में है, सड़क पर है, तुम्हारे बिस्तर पर (इस सत्य के मनन और अभ्यास करने में) है, तुम्हारे अध्ययन में है, तुम्हारे भोजनागार में है, तुम्हारे बैठकखाने में है, और तुम्हारे बातचीत करने के कमरे में है। इन मन्दिरों में तुम्हें रहना और सत्य का अनुभव करना होगा। ये स्थान हैं, जहाँ तुम्हें अपने सवाल हल करना होंगे।

उसने विचारा ("छड़ी से काम न लेना लड़के को बिगाड़ना है।" (तुम जानते हो कि अध्यापक समझते हैं कि लड़कों पर छड़ियाँ तोड़ डालने से उनका सुधार हो जाता है, और जितनी ही अधिक छड़ियाँ वे लड़कों को पीटने में तोड़ेंगे, उतना ही लड़के सुधरेंगे।) मन की इस अवस्था ने गुरु को अत्यन्त निर्दयी बना दिया, और उसने युवराज को ठोकना तथा मारना शुरू किया, किन्तु युवराज सावधान रहा। वह पहले की तरह प्रसन्न रहा, वह सदा की भाँति खुश रहा। गुरु ने कई मिनटों तक उसे पीटा, किन्तु राजकुमार के सुन्दर मुख पर क्रोध या चिन्ता, भय या रंज का कोई चिह्न नहीं दिखाई दिया। तब तो युवराज का चेहरा देखकर गुरुजी को तरस आ गया, मानों पत्थर भी तो पिघल जाता है। गुरु ने विचार किया और अपने मन में कहा, यह मामला क्या है? यह बात क्या है कि यह राजकुमार, जो अपने एक शब्द से मुझे बरखास्त करवा सकता है, और जो एक दिन मुझ पर और समग्र भारत पर हुकूमत करेगा, इतना शान्त है? मैंने उस पर इतनी कठोरता की, और वह जरा सा भी नाराज नहीं

से छड़ी गिर पड़ी, उनका हृदय कोमल हो गया। उन्होंने युवराज को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। साथ ही उन्हें अपनी मूर्खता का और अपने में व्यावहारिक विद्या के अभाव का यहाँ तक बोध हुआ कि उन्हें अपने पर शर्म आई, और युवराज की पीठ ठोककर उन्होंने कहा, "पुत्र! प्रिय राजपुत्र! कम से कम एक वाक्य ठीक ठीक पढ़ लेने के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि कम से कम एक वाक्य तो धर्म-ग्रन्थों का तुमने यथार्थ में पढ़ लिया है। अरे! मैं तो एक वाक्य भी नहीं जानता, मैंने तो एक जुमला भी नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे क्रोध आ जाता है और मैं क्षुब्ध हो जाता हूँ, सड़ी सी भी बात मुझे रुष्ट कर सकती है। ऐ मेरे पुत्र! मुझ पर दया कर, तू अधिक जानता है, तू मुझसे अधिक पठित है।" जब गुरुजी ने यह कहा, जब उन्होंने युवराज को उत्साहित किया, तब युवराज ने कहा, "पिता! पिताजी! मैंने अभी यह वाक्य अच्छी तरह से नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे अपने हृदय में कोप और रोष के कुछ लक्षण जान पड़े थे। जब पाँच मिनट तक मुझे ताड़ना मिली, तब मुझे अपने हृदय में कोप के कुछ चिह्न मालूम हुए थे।" इस तरह पर उसने दूसरे वाक्य के अर्थ भी बतलाये, इस तरह पर वह सत्य बोला, जब कि अपनी आन्तरिक दुर्बलता छिपाने के उसके लिए प्रत्येक प्रलोभन था, ऐसे में पर जब कि उसकी खुशामद हो रही थी। अपने अन्तःकरण में गुप्त दुर्बलता को अपने ही कर्मों से प्रकट करके युवराज ने सिद्ध कर दिया कि उसने दूसरा वाक्य 'सत्य बोलो' भी पढ़ लिया है। अपने कार्यों से, अपने जीवन द्वारा, उसने दूसरे वाक्य पर भी अमल किया

तो तुरन्त उसे साफ़ करने का यत्न करती है। इसी तरह, ऐसी सोहबत में समय बिताने के बाद कि जहाँ आपका व्यक्तित्व और अहंभाव उत्पन्न हुए थे, ऐसे संगियों से अलग होने के बाद तुरन्त ही पहला कर्त्तव्य यह है कि आप अपने हाथ धो डालो, अर्थात् उनसे निर्लिप्त हो जाओ और फिर ईश्वर होकर बैठो।

पुनः जब आप रुष्ट और पीड़ित हो, जब आपका धड़ा ठीक न हो, अर्थात् जब आप अस्थिर-चित्त हो, तब आपको क्या करना चाहिए? समान भार करने अर्थात् स्थिर चित्त करने की उसी शैली का अनुसरण करो।

वैद्य का तराज़ू हवा के कारण जब हिल जाता है, तब पलड़े ऊपर-नीचे लहराने लगते हैं। इसका वे (वैद्य) क्या इलाज करते हैं? वे उसे किसी निश्चल स्थान में रख देते हैं और फिर वह समय आ जाता है, जब धड़ा ठीक हो जाता है, और पलड़े अचल हो जाते हैं। इसी तरह, जब आपका चित्त व्यग्र या रुष्ट हो जाय, तब अपने को एक कमरे में बन्द कर लो, मित्रों का साथ छोड़कर एकान्त में चले जाओ। समय और एकान्त आपको बलवान बना देंगे। [illegible] का उच्चारण करो और वेदान्त का मनन करो, अपने ईश्वरत्व को, अपनी दिव्यता को सोचो और अनुभव करो, और आपका शीघ्र ही

रह सकते हो, यह भागीरथ श्रम आप अपने भीतर कर सकते हो, यह सम्भव है, यह आपके अपने तेज पर निर्भर है।

राम आपसे कहता है कि मैं भय से, चिन्ता से, रोष से परे हूँ। किन्तु निरन्तर साधन से इसकी प्राप्ति हुई है। निर्बलता और अन्धविश्वास के अत्यन्त गहरे गढ़े से अभ्यास ने राम को ऊपर निकाला है। एक समय राम अत्यन्त अन्धविश्वासी था, हवा का हरएक झकोरा राम के चित्त की समता को बिगाड़ देता था। पर अब सर्व अवस्था में चित्त अचल और सम रहता है। यदि एक आदमी ऐसा कर सकता है, तो आप भी कर सकते हो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

एकसाँ है। सभी को सत्य की यह कसौटी मान्य है। जो क़ायम रहता है, वह असली है। अधिष्ठान अर्थात् द्रष्टा के स्थिति-बिन्दु से यह चेतना तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है। जाग्रत् दशा में यह चेतना देह से अपनी अभेदता स्थापित करती है और जब आप 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब आपको इस शरीर, इस देह-चेतना का बोध होता है। स्वप्नशील अवस्था में वह बिलकुल दूसरी ही दशा धारण करती है। आप बदल जाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा वैसा ही नहीं है, जैसा कि जाग्रत्-द्रष्टा है। आप अपने स्वप्नों में अपने को निर्धन पाते हैं, यद्यपि आप धनी हैं। आप अपने को शत्रुओं से घिरा हुआ पाते हैं, आपका घर अग्नि से नष्ट हो जाता है, और आप विवस्त्र जीते बचते हैं। अपने स्वप्न में आपने चाहे कुछ पानी पिया हो, किन्तु जागने पर आप अपने को प्यासा पाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा जाग्रत्-द्रष्टा से भिन्न है। इस तरह चेतना स्वप्न की अवस्था में एक रूप धारण करती है, और जाग्रत्-अवस्था में दूसरा, और गाढ़ निद्रावस्था में तीसरा रूप धारण करती है। आपकी चेतना तब (गाढ़ निद्रा में) [illegible] से अपनी अभेदता स्थापित करती है। आप कहते हैं [illegible] इतनी [illegible] नींद आई कि मैंने कोई स्वप्न भी नहीं देखा। [illegible] गाढ़ निद्रा की दशा में आपमें कोई चीज है [illegible] बराबर जागता रहता है [illegible] जो [illegible] वही आपका [illegible] आत्मा [illegible] स्वरूप [illegible] है वह [illegible] चेतना से [illegible] वह [illegible] चेतना है [illegible] वह आपका स्वरूप अपना आप [illegible] है।

[illegible] मनुष्य आता और कहता है, "कल रात [illegible] बजे मैं ब्राडवे स्ट्रीट पर था, और मैंने कुछ नहीं देखा।"

समय वहाँ एक भी व्यक्ति नहीं था।" हम उससे कहते हैं कि वह अपना बयान लिख दे कि उक्त सड़क पर अमुक समय पर एक भी व्यक्ति मौजूद नहीं था। वह मनुष्य कहता है कि यह बयान सत्य है, क्योंकि मैं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हूँ। तब प्रश्न किया जाता है, "तुम कोई चीज़ हो या नहीं हो? यदि यह बयान तुम्हारे प्रमाण पर हम मानें, तो यह आत्मविरोधी है। यदि यह बयान सत्य है, तो आप वहाँ मौजूद थे।"

जब कोई गाढ़तम निद्रा में है, तब वह जागने पर कहा करता है कि मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा। हम कहते हैं, भाई! तुम यह बयान तो करते हो कि वहाँ कुछ नहीं था, किन्तु इस बयान के सही होने के लिये तुम्हें आकर गवाही देना पड़ेगी। यदि आप वस्तुतः ग़ैरहाज़िर थे, तो यह गवाही आप कैसे देते हो? आपमें कोई चीज़ ऐसी है, जो उस गाढ़ निद्रा में भी जागती है। वह आपका वास्तविक स्वरूप (आत्मा) है, वह चेतनस्वरूप वा ज्ञानस्वरूप (Absolute will or Absolute consciousness) है।

देखिये, इससे सारे संसार का प्रसार कैसे होता है। नदियों को देखिये। उनकी तीन दशायें होती हैं, एक हिमानी (glacier), दूसरी छोटे चश्मों और नालों की। बरफ पिघलते ही नदी बहुत ही कोमल, शान्त और शिशु अवस्था में होती है। तीसरी दशा वह है, जब नदी पहाड़ों को छोड़कर मैदान में उतर आती है, और बड़ी उत्पातिनी होती है तथा कीचड़ से भर जाता है। ये तीन दशायें हैं।

पहली दशा में पहाड़ों में, बरफ में, सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई पड़ता। दूसरी और तीसरी में वह (सूर्य का प्रतिबिम्ब) दिखाई देता है। दूसरी दशा में नदी जहाज़ या नौका को चलाने के लायक़ नहीं होती। वह किसी व्यावहारिक

काम की नहीं होती, तथापि वह बड़ी सुन्दर होती है। तीसरी दशा में वह नाव या जहाज चलाने के लायक होती है, और खेतों तथा घाटियों को भी उपजाऊ बनाती है। सो हम देखते हैं कि दो चीजें मौजूद थीं, एक सूर्य और दूसरी नदी।

एक आपमें सूर्यों का सूर्य है, जो गाढ़ निद्रावस्था में परमेश्वर है। वह सूर्यों का सूर्य जमी हुई बरफ़ पर चमकता है। वह सूर्यों का सूर्य, अचल, अव्यक्त, साक्षी है। जब वह सूर्य सुषुप्तिकाल की शून्य अवस्था पर कुछ समय तक चमकता रहता है, तब आपमें वह सूर्यों का सूर्य अपने को चमकीली, गरमानेवाली हालत में रखता है, और आपके कारण-शरीर को पिघलाता है, तब उस शून्यता से स्वप्नशील दशा प्रवाहित होती है। यही इंजील कहती है, "परमेश्वर ने शून्य से संसार की सृष्टि की।" परमेश्वर था और वह वही था, जो पहली दशा में शून्य कहा जाता है। जिस तरह सूर्य बरफ़ से नदियाँ पैदा करता है, ठीक उसी तरह जब सूर्यों का सूर्य, जो आपके भीतर परमेश्वर है, देखने-मात्र शून्यता पर (जिसे हिन्दू माया कहते हैं।) चमकता है, तब उसी वक़ द्रष्टा और दृश्य पदार्थ बाहर वह निकलते हैं। द्रष्टा के अर्थ ज्ञाता हैं और दृश्य पदार्थ वह है, जो देखा वा जाना जाता है।

स्वप्नावस्था का अनुभव जाग्रत्-अवस्था के अनुभव के लिये वैसा ही है, जैसा नन्हा, छोटा नाला महान् नदी के लिये है। लोग कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा के रूप में बना है। गाढ़ निद्रा में आपमें कोई अहंभाव नहीं है। किन्तु स्वप्न और जाग्रत्-अवस्था में आपमें अहंभाव है। स्वप्न और जाग्रत्-दशा में आप परमेश्वर का प्रतिबिम्ब रखते हो। असली आत्मा परमेश्वर है, सूर्य है, न कि यह प्रतिबिम्बित सुरत (मूर्ति)। स्वप्न में आप सब प्रकार की

काम की नहीं होती, तथापि वह बड़ी सुन्दर होती है। तीसरी दशा में वह नाव या जहाज़ चलाने के लायक़ होती है, और खेतों तथा घाटियों को भी उपजाऊ बनाती है। सो हम देखते हैं कि दो चीज़ें मौजूद थीं, एक सूर्य और दूसरी नदी।

एक आपमें सूर्यों का सूर्य है, जो गाढ़ निद्रावस्था में परमेश्वर है। वह सूर्यों का सूर्य जमी हुई बरफ़ पर चमकता है। वह सूर्यों का सूर्य, अचल, अव्यक्त, साक्षी है। जब वह सूर्य सुषुप्तिकाल की शून्य अवस्था पर कुछ समय तक चमकता रहता है, तब आपमें वह सूर्यों का सूर्य अपने को चमकीली, गरमानेवाली हालत में रखता है, और आपके कारण-शरीर को पिघलाता है, तब उस शून्यता से स्वप्नशील दशा प्रवाहित होती है। यही इंजील कहती है, "परमेश्वर ने शून्य से संसार की सृष्टि की।" परमेश्वर था और वह वही था, जो पहली दशा में शून्य कहा जाता है। जिस तरह सूर्य बरफ़ से नदियाँ पैदा करता है, ठीक उसी तरह जब सूर्यों का सूर्य, जो आपके भीतर परमेश्वर है, देखने-मात्र शून्यता पर (जिसे हिन्दू माया कहते हैं) चमकता है, तब उसी वक़्त द्रष्टा और दृश्य पदार्थ बाहर [illegible] निकलते हैं। द्रष्टा के अर्थ ज्ञाता है और दृश्य पदार्थ वह है, जो [illegible] जाना जाता है।

स्वप्नावस्था का अनुभव जाग्रत्-अवस्था के अनुभव के लिये वैसा ही है जैसा नन्हा, छोटा नाला [illegible] नदी के लिये है। लोग कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा के रूप में बना है। [illegible] निद्रा में आपमें कोई अहंभाव नहीं है। किन्तु स्वप्न और जाग्रत्-अवस्था में आपमें अहंभाव है। स्वप्न और जाग्रत्-दशा में आप परमेश्वर का [illegible] रखते हो। असली आत्मा परमेश्वर [illegible] यह [illegible] सरत (मूर्ति)। स्वप्न में आप [illegible] की

चीजें देखते हैं। किसी वस्तु को (स्वप्न में) देखने के लिये, किस प्रकाश में आपको उसे देखना पड़ता है? वह चन्द्रमा का प्रकाश है या नक्षत्रों का या भौतिक सूर्य का कि जो हमें स्वप्न में वस्तुओं को देखने की शक्ति देता है? किसी का भी नहीं। फिर वह कौन-सा प्रकाश है, जो स्वप्न में सब प्रकार की वस्तु देखने के योग्य बनाता है? वह आपके अन्दर का प्रकाश है। वह वही प्रकाश है, जो प्रत्येक पदार्थ को दृष्टि-गोचर बनाता है। यह प्रकाश जो स्वप्न में सब प्रकार की वस्तुओं को देखने की शक्ति आपको देता है, केवल गाढ़ निद्रावस्था में स्वच्छन्द रूप से चमका था। स्वप्न में वह पदार्थों को अवलोकनीय बनाता है। इस तरह पर घनसुषुप्ति में और स्वप्नावस्था में भी वह प्रकाश निरन्तर रहता है। स्वप्न में यदि आप चन्द्रमा देखते हैं, तो चन्द्र और साथ ही उसके प्रकाश की स्थिति का भी कारण आपके अन्दर का प्रकाश है।

आज यह सिद्ध किया गया है कि तुम प्रकाश-स्वरूप हो, तुम प्रकाशों के प्रकाश हो। जैसे कि नदी के संबंध में जानते हो कि उसके मूल में भी वही सूर्य है, जो मुहाने पर है; उसी तरह असली आत्मा तुममें सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-दशा में वही है। तुम वही हो। अपने को उस अंतर्यामी आत्मा से अभेद कर दो, तब तुम बलिष्ट और शक्ति से पूर्ण होते हो। यदि आप चंचल, परिवर्तनशील वस्तुओं से अपनी अभेदता क़ायम करते हो, तो आप उस लुढ़कते हुए पत्थर के समान हो जाते हो कि जिसमें काई या सेवार नहीं जमती। सूय केवल एक ही नदी के उत्पत्ति-स्थान, बीच और मुहाने पर नहीं है, किन्तु दुनिया की सब नदियों की सब अवस्थाओं में भी वही है।

आपमें जो प्रकाशों का प्रकाश है, वह दुनिया के सब लोगों की सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थाओं का वास्तविक आत्मा

है। वह प्रकाश उन पदार्थों से भिन्न नहीं है, जिन पर वह चमकता है। आप वह प्रकाशों के प्रकाश हो। इस विचार (ख्याल) पर टिको कि मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। वही मैं हूँ। प्रकाशों के प्रकाश से अपनी अभिन्नता क़ायम करो। वही आपका असली स्वरूप है। कोई डर नहीं, कोई झिड़कियाँ नहीं, कोई शोक नहीं, सर्वत्र वह है। प्रकाशों का प्रकाश, अविच्छिन्न, निर्विकार, कल और आज तथा सदा एकरस। मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। सारी दुनिया केवल लहरें, केवल तरंगें और चक्कर जान पड़ती है।

'क्षुद्रात्मा वा परिच्छिन्नात्मा' को जो पर्दा घेरे हुए है, उसे हटाने में निम्न-लिखित उपाय बहुत ही उपकारी सिद्ध होगा।

लोग कहते हैं, "सैर करते समय बातचीत के लिये एक मित्र होना चाहिये।" नीचे लिखे कारणों से यह कथन भ्रमजनक वा असत्य है :—

प्रथम—जब हम अकेले चलते हैं, तब हमारी साँस स्वाभाविक, ताल-बद्ध और स्वास्थ्यकर होती है। इस कारण से, कांट [illegible] अपने जीवन के अन्तिम भाग में सदा अकेला सैर करता था, ताकि साँस का ताल बराबर बना रहे, और उसने अच्छा दीर्घ आयु पाई। जब हम अकेले चलते हैं, तब हम नथनों से साँस ले सकते हैं; किन्तु जब हम बातें करते होते हैं, तब हमें अपने मुख से साँस लेनी पड़ती है। नथनों से साँस लेना सदा श्रेष्ठतर है, और फेफड़ों को बलवान बनाने के परमेश्वर ने मनुष्य के नथनों में साँस भरा, मुख में नहीं। हम मुख से साँस बाहर भले निकालें, किन्तु भीतर साँस सदा नथनों से ही खींचना चाहिये। जो हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है वह नथनों के बालों से छन कर जाती है।

केन्द्रच्युत न हो

(ता० ९ जून १९०३ को कैसिल स्प्रिंग्स में दिया हुआ व्याख्यान)

यहाँ के लोगों का ढंग यह है कि भोजन करते समय बातचीत करते रहते हैं, किन्तु भारत में दूसरी ही चाल है। वहाँ भोजन करते समय बातचीत नहीं की जाती। आप जानते हैं कि वहाँ भोजन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को खाने की क्रिया मानों धार्मिक भाव से करनी पड़ती है, उसे पवित्र कृत्य बनाना पड़ता है। आपके मुख में जानेवाले भोजन के हरएक ग्रास के साथ आपको इस विचार पर ध्यान देना होता है कि यह कौर (ग्रास) बाह्य संसार का प्रतिनिधि है, और इस प्रकार मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने में सम्मिलित कर रहा हूँ। और वे खाते समय निरन्तर इस विचार को अपने चित्त में रखते हैं और ॐ जपते रहते हैं, मन से अनुभव करते और समझते जाते हैं कि सम्पूर्ण संसार मुझमें सम्मिलित है। ॐ, ॐ, विश्व मुझमें है, दुनिया मेरी देह है। इस प्रकार, प्रत्येक ग्रास के साथ वे आध्यात्मिक बल प्राप्त करते हैं। आध्यात्मिक और शारीरिक भोजन साथ-साथ होता है। सारी दुनिया मैं हूँ, मेरा ही मांस और रुधिर है। भोजन सम्पूर्ण संसार का, जो मेरा अपना ही मांस और रक्त है, एक प्रतिनिधि है। सब एकता है। हिन्दुओं का इससे घनिष्ठ परिचय होने के कारण ये सब विचार उनके चित्तों और भावनाओं में एकत्रित हो जाते हैं, भावुक प्रकृति [illegible] और संकल्प-[illegible] power की यहाँ तक पुष्टि होती है कि तु

राम आपमें से हरएक से एक बात की सिफारिश करता । सवेरे जब आप उठते हैं या चलते हैं अथवा कोई और काम करते हैं, तब अपने विचार सदा निज धाम में रखिये। सदा अपने आपको केन्द्र में रखिये । केन्द्रच्युत मत हूजिये । जिस तरह मछलियाँ जल में रहती हैं, जिस तरह चिड़ियाँ वायु में रहती हैं, उसी तरह आप प्रकाश में रहो । प्रकाश में आप रहो, चलो, फिरो और अपना अस्तित्व रक्खो । जब अँधेरा होता है, तब भी विज्ञान के अनुसार प्रकाश ही होता है । आन्तरिक प्रकाश सदा मौजूद है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में प्रकाश उपस्थित है। एकाग्रता की सहायता में, आत्मानुभव के उच्चतम शिखर पर चढ़ने के निमित्त, जिज्ञासुओं के लिये यह अत्यन्त आवश्यक पाया गया है कि वे अपनी सत्ता को प्रकाश का साथी मानें ।

भौतिक वस्तु के रूप में हम प्रकाश की पूजा नहीं करते हैं, जैसा कि रोमन कैथोलिक ईसाई अपनी मूर्तियों के साथ करते हैं । आत्मानुभव के अत्यन्त निश्चित उपाय के तौर पर, हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में, यह बार-बार उपदेश दिया गया है कि अपने आपको निरन्तर संसार का प्रकाश समझते हुए पूजा का आरम्भ करना चाहिये । जब आप ॐ जप रहे हों, तब अनुभव कीजिये कि आप प्रकाश हैं, तेज हैं। प्रकाश आप हैं [illegible] जो हिन्दू-शास्त्रों में बड़े विज्ञान के साथ प्रकट किया गया था, इसकी ठोकर सब महात्माओं को लगी थी । ईसा ने कहा, "मैं संसार का प्रकाश हूँ।" मोहम्मद और सब महान पुरुष इसी प्रकार से बोले थे। प्रकाश के रूप में आप सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। इन विचारों को निरन्तर आपको अपने सामने रखना चाहिये और

किसी विषय पर विचार करना शुरू करो, और आपको जान पड़े कि आप अपने विचारों को क़ाबू में नहीं ला सकते, तब आप यह प्राणायाम करो, और इससे जो आपको तुरन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी, उस पर आपको विस्मय होगा। हरएक वस्तु क्रमानुसार (ठीक स्थान पर) है। हरएक वस्तु अत्यन्त वांछनीय अवस्था में रक्खी हुई है। प्राणायाम के ये लाभ हैं:— इससे आपके बहुत से शारीरिक रोग दूर हो जायँगे। प्राणायाम से आप पेट के दर्द से, सिर के दर्द से, दिल के दर्द से अच्छे हो सकते हैं। अब हम देखेंगे कि यह प्राणायाम क्या है। इस देश में लोग इस या उस विधि से प्राण का नियमन करने का यत्न कर रहे हैं, किन्तु राम आपके सामने वह उपाय रखता है, जो समय की परीक्षा में पूरा उतर चुका है, जो भारत में अति प्राचीन काल में प्रचलित था, और जिसका आज भी वहाँ प्रचलन है, तथा अति प्राचीन काल से लगाकर आज तक जिस किसी ने उसका अभ्यास किया है, उसी ने उसे अत्यन्त उपयोगी पाया है।

अस्तु, प्राणायाम करने के लिये आपको अत्यन्त सुखकर, सरल स्थिति में [illegible] पर चढ़ाकर बैठना बड़ा ही सुखकर आसन है, [illegible] पश्चिमी भारत-वासी [illegible] पर बैठ सकते हैं [illegible] कड़ी रक्खो, सिर [illegible] दाहिने हाथ का [illegible] नथने से [illegible] भीतर साँस खींचते रहो, [illegible] तक आराम से [illegible] रहो। साँस भीतर खींचते समय [illegible] को शून्य न होने

क्रमशः साँस बाहर निकालिये। तब भी मन को सुस्त न होने दीजिये, वह काम में लगा रहे, उसे अनुभव करने दो कि ज्यों-ज्यों साँस आ रही है, और पेट की सब मलिनता दूर हो रही है, त्यों-त्यों सारी मलिनता, अशुद्धता, सारी गंदगी, सारी दुष्टता, दुर्गन्धता, सम्पूर्ण अविद्या बाहर निकल रही है, दूर की जा रही है, और त्यागी जा रही है। सारी दुर्बलता कूच कर गई, न कोई दुर्बलता है, न अविद्या है, न भय है, न चिन्ता, न व्यथा, न परेशानी, न क्लेश हैं, सबका अन्त हो गया, सब चले गये, आपको छोड़ गये। जब आप साँस बाहर निकाल चुको, आराम से जितनी साँस बाहर निकाल सकते हो, उतनी जब आप निकाल चुको; तब तक साँस बाहर निकालते रहो, जब तक आप आराम से निकाल सकते हो, और जब आपको समझ पड़े कि अब और साँस बाहर नहीं निकाली जा सकती, तब दोनों नथनों को खुले रखते हुए यत्न करो कि तनिक भी हवा

जैसा कि दूर तक चलने के बाद होता है। साँस का यह स्वाभाविक भीतर जाना और बाहर निकलना, जो बहुत शीघ्रता से होता रहता है, स्वतः प्राणायाम है। यह प्राकृतिक प्राणायाम है। इस प्रकार विश्राम लेने के बाद, कुछ देर तक अपने फेफड़ों को भीतर साँस लेने और बाहर निकाल देने के बाद पुनः प्रारम्भ करो। अब शुरू करो, बायें से नहीं बल्कि दाहिने नथने से। मानसिक क्रिया पूर्ववत्। केवल नथनों में अदला-बदल हो गया। दाहिने नथने से साँस भीतर खींचो और ऐसा करते समय समझो कि मैं परमेश्वर को साँस में भीतर खींच रहा हूँ। यथाशक्ति साँस भीतर खींच चुकने के बाद जब तक आराम से हो सके तब तक साँस अपने भीतर रखिये। और फिर जब साँस आपके भीतर है, अनुभव कीजिये कि आप सम्पूर्ण विश्व का जीवन और साँस हैं, आप विश्व के विश्व को परिपूर्ण और संजीवित करते हैं।

प्रतिफलित होता है और इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वे ग़लती पर हैं। प्राणायाम या साँस के इस नियंत्रण में कोई अलौकिकता नहीं है। यह एक साधारण व्यायाम है। जिस तरह बाहर जाकर शारीरिक व्यायाम करते हैं, उसी तरह यह एक प्रकार की फेफड़ों की कसरत है। इसमें कोई वास्तविक महिमा नहीं है, इसमें कोई गुप्त भेद नहीं है।

प्राणायाम के संबंध में एक बात और कही जानी चाहिये। जब आप साँस भीतर खींचना या बाहर निकालना शुरू करें, तब अपने पेड़ू (इस शब्द के व्यवहार के लिये राम को क्षमा कीजिये) को, शरीर के अधो भाग को, भीतरी ओर खिंचा रखिये। इससे आपका बड़ा हित होगा। पुनः जब आप साँस भीतर खींचें या बाहर निकालें, तब साँस को अपने सम्पूर्ण उदर में पहुँचने और भरने दीजिये। ऐसा न हो कि साँस केवल हृदय तक जाय और हृदय से आगे न जाने पाये। साँस को नीचे और गहरा उतरने दीजिये। अपने शरीर का प्रत्येक छिद्र (ख़ाली स्थान), अपने शरीर का सब ऊपरी आधा भाग परिपूर्ण हो जाने दीजिये। अस्तु, प्राणायाम के संबंध में इतना यथेष्ट है, और वेदान्त की रीति पर जो लोग अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं, वे ॐ का उच्चारण (जाप) शुरू करने के पूर्व, वेदान्तिक साहित्य में पढ़ी हुई किसी विधि पर मन की एकाग्रता आरम्भ करने के पूर्व, प्राणायाम करना अत्यन्त उपयोगी पावेंगे।

अब राम चित्त को एकाग्र करने की एक विधि आपके सामने रक्खेगा। इस काग़ज़ (प्रबन्ध) को अभी पढ़ना शुरू करने की आपको कोई ज़रूरत नहीं है। राम आपको बतावेगा कि इसे कैसे पढ़िये। भला आप जानते हैं कि यह किनके लिये है, जो राम के व्याख्यानों में आते रहे हैं। जिन

हैं। बाहरी व्यापार के संबंध में आपने मोह-वश अपने को एक जड़ता में परिणत कर लिया है, और यही बात है कि आप अपने को सब तरह की बीमारियों और क्लेशों में फँसाते हैं। जब आपका चित्त बहुत गिरा हुआ हो, तब इस काग़ज़ को उठा लीजिये और अनुभव कीजिये कि 'बस, केवल एक सत्य है'। देखिये कि यह एक कथन उन सब नाम-मात्र सत्यों से उच्चतर कथन है, जो संबंधियों के द्वारा आपमें धीरेधीरे भर दिये गये हैं। सब नाम-मात्र तथ्य, जिनको आप तथ्य मानते रहे हैं, माया-मात्र वा भ्रम-मात्र हैं। इन्द्रियों के इन्द्रजाल ने आपके लिये इनको बना रक्खा है। इन्द्रियों के चकमें में न आओ। एक व्यक्ति आता है और आपमें दोष निकालकर आपकी आलोचना करता है, दूसरा आता और आपको गालियाँ देता है, तीसरा आता और आपकी ख़ुशामद करता तथा आपको अति स्तुति करके फुला देता है। ये सब तथ्य नहीं हैं, ये सब सत्य नहीं हैं। असली तत्त्व, कठोर तथ्य तो आपको अनुभव करना चाहिये। इसे जपते समय उस सारे विश्वास को आप उड़ा दीजिये व निकाल दीजिये कि जो आपने बाहरी दृश्य रूप परिस्थितियों में बना रक्खा [illegible] अपनी सब शक्तियों और बल इस तथ्य में लगाओ, 'बस, केवल एक सत्य [illegible]' अस्तु, प्राय: आप देखेंगे कि 'केवल एक सत्य है' के विचार का प्रथम पाठ आपको प्रसन्न और [illegible] कर देगा, आपको सब कठिनाई और व्यथा से मुक्त कर देगा। किन्तु यदि आपकी और आगे पढ़ने की [illegible] हो, तो आप [illegible] सकते हैं, अन्यथा यदि आप अपनी जेब के उस [illegible] का [illegible] वाक्य अमल में [illegible] सकें, तो यथेष्ट है। यदि आप समझें कि आपको कुछ और बल की आवश्यकता

तरह, आत्मा ही के कारण, सर्वशक्तिमान् परम स्वरूप के ही कारण विश्व में प्रत्येक व्यापार हो रहा है। 'सर्वशक्तिमान्, सर्वशक्तिमान् ॐ! ॐ !! ॐ !!!' इस तरह उन सब सन्देहों को, जो आपको दुर्बल बनाते और पराजित करते हैं, उन सब भ्रान्तियों को, जो आपको कायर बनाती हैं, आपके सामने घुस आने का कोई अधिकार नहीं है। अनुभव कीजिये कि आप सर्वशक्तिमान हैं। जैसा आप ख्याल करते हैं, वैसे ही आप हो जाते हैं। अपने आपको पापी कहिये और आप पापी हो जाते हैं, अपने आपको मूर्ख कहिये और आप मूर्ख हो जाते हैं, अपने आपको दुर्बल कहिये, फिर इस दुनिया की कोई शक्ति आपको प्रबल नहीं बना सकती। अनुभव कीजिये कि सर्वशक्ति और सर्वशक्तिमान् आप हैं।

तब 'सर्वज्ञ' का भाव आता है। इस सर्वज्ञता के भाव को आप ग्रहण करें, मन को इस भाव पर मनन करने दीजिये, ॐ का गान करने दीजिये। ॐ शब्द सर्वज्ञ का स्थानीय है, और ॐ उच्चारिये। शब्द या सूत्र जो उच्चारा जाना चाहिये वह ॐ है। सर्वज्ञ, ॐ, ॐ। इस तरह चलो और उन ग़लत विचारों को, जो आपको मुग्ध करके जाहिल वा मूर्ख बनाये हुए हैं, दूर कर दो। परमेश्वरता का सबसे सीधा रास्ता यही है।

ऐसा ही भाव 'सर्वव्यापी' का लीजिये। अनुभव करो कि "मैं परिच्छिन्न नहीं हूँ, यह क्षुद्र शरीर नहीं हूँ, मैं यह परिच्छिन्नात्मा नहीं हूँ; यह जीव, यह 'अहं' मैं नहीं हूँ। हरएक अणु और परमाणु में जो व्याप्त और भिदा हुआ है, वह मैं स्वयं हूँ।" इस संबंध में तनिक भी सन्देह चित्त में न लाओ। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, वह मैं हूँ, वह हरएक चीज़ में व्याप्त है, सब शरीर मेरे हैं। ॐ! ॐ !! ॐ !!!

अस्तु, बाक़ी वाक्यों पर अधिक टिकने वा ठहरने की

है।' इसे मानो और इसे पढ़ते समय उन दलीलों को ध्यान में लाओ, जिन्हें वेदान्त इस तथ्य को सिद्ध करने में पेश करता है। इस तथ्य को सिद्ध करने में आप जो कुछ भी जानते हो, उसे ध्यान में लाओ, और यदि आपने ऐसी कोई भी बात पढ़ी या सुनी नहीं है, जो साबित करती है, कि दुनिया मेरा संकल्प है, तो इस विचार पर विश्वास करो, और आप देखेंगे कि दुनिया आपकी कल्पना-रूप है। 'दुनिया मेरी कल्पना है,' ॐ उच्चारो और ऐसा समझो। इसी प्रकार बाक़ी सब,

सर्व आनन्द मैं हूँ।	ॐ !	ॐ !!	ॐ !!!
सर्व ज्ञान मैं हूँ।	,,	,,	,,
सर्व सत्य मैं हूँ।	,,	,,	,,
सर्व प्रकाश मैं हूँ।	,,	,,	,,
निडर, निर्भय मैं हूँ।	,,	,,	,,
न कोई अनुराग या विराग। मैं सब इच्छाओं की पूर्णता हूँ।	,,	,,	,,
मैं परमात्मा हूँ।	,,	,,	,,
मैं सब कानों से सुनता हूँ।	,,	,,	,,
मैं सब आँखों से देखता हूँ।	,,	,,	,,
मैं सब मनों से सोचता हूँ।	,,	,,	,,
जो सत्य मेरा स्वरूप है, उसी को जानने की साधु आकांक्षा करते हैं।	,,	,,	,,
प्राण और प्रकाश जो नक्षत्रों और सूर्य के द्वारा झलकता है, वह मैं हूँ।	,,	,,	,,

अब काग़ज़ समाप्त हो गया।

अब इसे स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्द कहे जा सकते

हैं। हिन्दी-कहानियों में एक बड़ी सुन्दर कहानी है। एक समय में एक बड़े पंडित, बड़े महात्मा थे। कुछ लोगों को वे पवित्र कथा सुना रहे थे। ऐसा हुआ कि गाँव की ग्वालिनें पंडितजी के पास से होकर निकलीं, जब कि वे पवित्र कथा बाँच कर लोगों को सुना रहे थे। इन ग्वालिनों ने पंडितजी के मुख से ये वचन सुने "पवित्र-स्वरूप परमेश्वर का पवित्र नाम बड़ा जहाज़ है, जो हमें भव-सागर के पार लगा देता है। मानों कि सागर एक छोटा सरोवर-मात्र है। बिलकुल कुछ नहीं है।" इस प्रकार का कथन उन्होंने सुना। इन ग्वालिनों ने उस कथन को शब्दशः ग्रहण किया। उन्होंने उस कथन में अचल विश्वास स्थापित किया। उस पार अपना दूध बेचने के लिये उन्हें नित्य नदी पार करनी पड़ती थी। वे ग्वालिनें थीं। उन्होंने अपने मन में सोचा। वह पवित्र वचन है, वह ग़लत नहीं हो सकता, अवश्य वह यथार्थ होगा। उन्होंने कहा, "नित्य एक एकन्नी हम मल्लाह को क्यों दें? परमेश्वर का पवित्र नाम लेकर और ॐ उच्चारती हुई हम नदी को क्यों न पार करें? हम नित्य एकन्नी क्यों दें?" उनका विश्वास वज्र के समान कठोर था। दूसरे दिन वे आईं और केवल ॐ उच्चारा, मल्लाह को कुछ नहीं दिया, नदी पार करना शुरू किया, नदी उतर गईं और वे डूबी नहीं। प्रतिदिन वे नदी पार करने लगीं, मल्लाह को वे कुछ नहीं देती थीं। लगभग एक महीने के बाद उस उपदेशक के प्रति कि जिसने वह वाक्य पढ़े थे और उनका पैसा बचाया था, अत्यन्त कृतज्ञता का भाव उनमें उदय हुआ। उन्होंने महात्मा को अपने घर पर भोजन करने को निमन्त्रण दिया। अस्तु, निमन्त्रण स्वीकृत हुआ, नियत तिथि पर महात्मा को उनके घर पधारना पड़ा। एक ग्वालिन महात्मा को लेवाने आई। वह

डूबने लगा। साथियों ने उसे बाहर निकाल लिया। अब तनिक ध्यान दीजिये। इस प्रकार की श्रद्धा जैसी महात्मा में थी, यह श्रद्धा जैसा विश्वास उत्पन्न करती है, वह रक्षा का बीज नहीं हो सकती। आपके दिलों में यह कुटिलता है। जब आप ॐ उच्चारना शुरू करते हैं या परमेश्वर का नाम लेते हैं और कहते हैं, 'मैं स्वास्थ्य हूँ, स्वास्थ्य', पर अपने हृदयों के हृदय में आप काँपते हैं, आपके हृदयों के हृदय में वह तुच्छ काँपता, लरज़ता 'अगर' मौजूद रहता है कि 'अगर मैं डूबने लगूँ, तो मुझे बाहर निकाल लेना'— आपमें वह क्षुद्र हिचकिचा 'अगर' है। आपके चित्त में कोई पक्का विश्वास, निश्चय, श्रद्धा व प्रतिज्ञा नहीं है। यह एक तथ्य है कि संसार के सारे भेद और परिस्थितियाँ मेरी सृष्टि हैं, तथा मेरी करतूत हैं, और कोई चीज नहीं हैं। आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो। ऐसा आप समझो। इसी क्षण इसे अनुभव करो। दृढ़, अचल विश्वास रक्खो। ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करो। आप देखेंगे कि आज बनाये गये ढंग से नित्य इस पत्र को पढ़ने से आप को बाँधनेवाले सब 'अगर-मगर' दूर हो जायँगे। अपनी परमेश्वरता से निरन्तर अपने आपका लगाव रखने से तुच्छ 'यदि' से छुटकारा हो जायगा। यदि पाँच बार नहीं, तो कम से कम नित्य दो दफ़े इस काग़ज़ को पढ़ो, और आपके सब क्षुद्र 'अगर' निकाल दिये जायँगे।

राम अब व्याख्यान बन्द करता है, और आपमें से जो लोग कुछ सामाजिक बातचीत राम से करना चाहते हैं वे, यह आसन छोड़ चुकने के बाद, ऐसा कर सकते हैं। यह आसन ॐ, ॐ, ॐ, उच्चारने के बाद छोड़ूँगा।

एक शब्द और। आपमें से जिन लोगों ने ये व्याख्यान

नहीं सुने हैं, और इसलिये राम के इस व्याख्यान को नहीं समझ सके हैं, वे इस सम्पूर्ण वेदान्तिक तत्त्वज्ञान को पुस्तक के रूप में अत्यन्त दार्शनिक ढंग से प्रकाशित पावेंगे। सम्पूर्ण वेदान्त-दर्शन आपके सामने पेश किया जायगा। तथा एक शब्द और भी। जितने संदेह वेदान्त-दर्शन के संबंध में आपके मन में हैं, और आपमें जितनी आशंकाएँ हैं, वे ही सब संदेह और संशय एक समय में स्वयं राम के रहे हैं। आपके अनुभव और आपके सन्देह स्वयं राम के संदेह हैं। राम इन रास्तों में से होकर निकल चुका है, और आपको विश्वास दिलाता है कि हमारे सब सन्देह औंधे अज्ञान हैं। ये सब सन्देह क्षणस्थायी हैं, वे एक पल में उड़ सकते हैं। यदि आपमें से कोई अपने सन्देहों के संबंध में राम से विशेष वार्तालाप करना चाहता है, तो वह कर सकता है।

पुनः यह कहा जा सकता है कि यदि आप आपत्ति से

ये अति आशा-पूर्ण चिह्न हैं। किन्तु राम आपसे कहता है कि यदि आप सत्य को उसके पूर्ण प्रताप और सौन्दर्य्य के साथ प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदान्त मौजूद है। आप इसका चाहे जो नाम रख लें, किन्तु इन हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में वे (ऋषि) इसे अति सुस्पष्ट और स्वच्छ भाषा में उपस्थित करते हैं। यह सर्वश्रेष्ठ सत्य है कि 'आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो।' यह समझो, यह अनुभव करो, और फिर आपको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता, आपको कोई भी चोट पहुँचा सकता, आप प्रभुओं के प्रभु हो। 'दुनिया मेरा है, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ।' यह है सत्य। यदि आप सी बातें सुनने के अभ्यासी नहीं हैं, तो खौफ़ न खाइये। यदि आपके पूर्वजों का इसमें विश्वास नहीं था, तो क्या हुआ? आपके पूर्वजों ने अपनी पूर्ण शक्ति से काम लिया, आपको अपनी पूर्ण शक्ति काम में लाना चाहिये। आपकी मुक्ति, आपके पूर्वजों का उद्धार आपका अपना काम है। वेदान्त को ग़ैर न समझो। नहीं, यह आपके लिये स्वाभाविक है। क्या आपकी निजी आत्मा आपके लिये ग़ैर है? वेदान्त आपको केवल आपकी आत्मा और स्वरूप के संबंध में बताता है। यह तब ग़ैर हो सकता था, जब आपका अपना ही आत्मा आपके लिये ग़ैर होता। सब पीड़ाएँ—शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक—वेदान्त का अनुभव करने से तुरन्त रुक जाती हैं, और अनुभव कठिन काम है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सोऽहम्

(ता० १० जून १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान।)

एक बड़ा ही उपयोगी मंत्र है, जिससे हरएक को परिचित होना चाहिये। वह है 'सोऽहम्' (Soham)। अंग्रेजी भाषा में 'सो' का अर्थ है 'ऐसा'; किन्तु संस्कृत भाषा में 'सो' का अर्थ है 'वह', और 'वह' का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा है। इस तरह 'सो' शब्द का अर्थ परमेश्वर है। भारत में स्त्री अपने पति का नाम कभी नहीं लेती। उसके लिये दुनिया में केवल एक पुरुष है, और वह (एक पुरुष) उसका पति है। वह स्त्री सदा अपने पति को 'वह' कहती है, मानो समग्र विश्व में कोई और व्यक्ति मौजूद ही नहीं है। फलतः उसके लिये 'वह' सदा परमेश्वर है, और परमेश्वर सदा उसके विचारों में है। इसी तरह वेदान्त में आये 'सो' शब्द का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा है, और स्वयं केवल एक सत्य-मात्र है, यह विचार निरन्तर [illegible]

[illegible]

निरन्तर हमारे मनों में रहनी चाहिये। साँस को ताके रहो और इस मंत्र 'सोऽहम्' के द्वारा उसे सुरीली बनाओ। यह एक मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक व्यायाम है। साँस लेने में दो क्रियाओं का समावेश है, भीतर जाना और बाहर निकलना, साँस लेना और साँस निकालना। भीतर साँस लेते समय 'सो' कहा जाता है, और बाहर साँस निकालते समय 'हम्' कहा जाता है। कभी-कभी प्रारम्भ करनेवाले को 'ॐ' की अपेक्षा 'सोऽहम्' जपना (उच्चारना) बहुत सहज पड़ता है। यह दोनों को आलिंगन करता है। जब इसे धीमे-धीमे उच्चार रहे हो, तब इस पर विचार करो, भीतर-ही-भीतर और चित्त से इस पर मनन करो, किन्तु इस सारे समय बिलकुल स्वाभाविक रीति पर साँस लेते रहो। यह सच्चे प्रकार की आत्म-सूचना है, जो मनुष्य को इन्द्रियों के सम्मोहन से हटाकर परमेश्वरता में लौटा ले जाती है। वह हूँ मैं। विश्व में हर समय तालबद्ध गति हो रही है। संस्कृत में 'सो' शब्द का अर्थ सूर्य भी है। सूर्य हूँ मैं। मैं प्रकाश का दाता हूँ, मैं लेता कुछ नहीं हूँ, पर देता सब हूँ। मैं दाता हूँ और लेनेवाला नहीं हूँ। मान लीजिये कि हम दूसरों से बहुत ही रूखी चिट्ठियाँ और डाही पुरुषों की कठोर आलोचनाएँ पानेवाले हैं। तो क्या इससे हमें रंजीदा और हैरान तथा परेशान होना चाहिये? नहीं। अपनी परमेश्वरता में क्षोभरहित चैन से रहो। जो आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं, उनका कृपापूर्ण और प्रेममय चिन्तन करो। वे तुम्हारे अपने स्वरूप हैं, और अपने निजी

 के लिये आप केवल अच्छे विचार रख सकते हैं। मैं सूर्यों का सूर्य हूँ। प्रकाश, प्रताप, शक्ति मैं हूँ। मुझे कौन हानि पहुँचानेवाला है? मेरा अपना आप मेरे अपने आप

हानि नहीं पहुँचा सकता। असम्भव है। दूसरों की
मिथ्या सन्मतियों से ऊपर उठो। परमेश्वर को सदा
ने द्वारा बोलने, सोचने और कार्य करने दो, अपनी
मेश्वरता में शान्ति से चैन करो। मैं सूर्य हूँ, दुनिया को
काश देनेवाला हूँ।

पूर्ण शक्ति अनुभव करो। आप देखते हैं कि हमारी सब
ठिनाइयों का कारण 'अहं', परिच्छिन्न अपने क्षुद्र 'अहं'
सत्कार है। यही विचार है, जो हमें दुर्बल करता और
र डालता है। इस रोग को दूर करने के लिये किसी
यक्ति या हरएक व्यक्ति को स्वभावतः एक कमरे में बैठ जाना
ता है, और वहाँ रोना या विलपना, अपनी छाती पीटना,
ौर यह कहना होता है "निकल शैतान, निकल, निकल शैतान,
नकल।" अपने को ऐसी हालत में लाओ कि मानो यह
ह आपकी कभी पैदा ही नहीं हुई थी। आप तो परमेश्वर
ो, आप यह [illegible] नहीं हो। यदि आप अपने आपको देश-
ाल [illegible] तो दूसरे लोगों के विचार
और [illegible] आपका [illegible]

रचना है। श्रेष्ठ राजकुमार की भाँति अपना काम करो। हरएक चीज़ आपके लिये खेल की-सी चीज़ होना चाहिये। अपने सामने का काम प्रसन्नता से, स्वच्छन्दता से करो।

रोग दो प्रकार के हैं। भारतीय भाषा में हम उन्हें आध्यात्मिक (भीतरी) रोग और आधिभौतिक (बाहरी) रोग कहते हैं। इसका शब्दार्थ है शैतानी रोग (demon disease) और दैवी रोग (fairy disease), विकट रोग और नारी-रोग। इसका क्या अर्थ है? अरे, मायिक या नारी-रोग वह है, जो हमारे भीतर से उठता है। हमारे भीतर की इच्छाएँ, हमारी आकांक्षाएँ, हमारे अनुराग, हमारी लालसाएँ मायिक या नारी-रोग हैं। और विकट रोग या यथार्थ रोग वे हैं, जो दूसरों के कार्यों या प्रभावों से हमें होते हैं। अस्तु, किसी मनुष्य को नीरोग कैसे किया जाय? लोग कहते हैं, पुरुष-रोग जिसे आधिभौतिक रोग, दानव रोग, या बाहरी रोग कहते हैं, उसके संबंध में अपने आपको परेशान मत करो। जिस क्षण आप अपने आपको अपनी निर्बलकारिणी इच्छाओं से रहित करते हैं, जिस क्षण आप अपना पिंड उनसे छुड़ाते हैं, उसी क्षण तुरन्त बाहरी रोग आपको छोड़ देते हैं। किन्तु इस दुनिया में लोग एक भूल करते हैं, वे अपने निजी कर्तव्य को नहीं देखते। वे कठिनता के उस भाग पर नहीं ध्यान देते, जिसकी सृष्टि उन्हीं की इच्छाओं से होती है। वे पहले बाहरी भयों से शुरू करते हैं, अतः वे ग़लत जगह से शुरू करते हैं, पहले परिस्थितियों से लड़ना चाहते हैं। वे नर-रोग को, रोग दूसरों के प्रभाव द्वारा आता है, हटाना चाहते हैं।

कहता है कि आपकी इच्छायें आपकी अपनी कमज़ोरियाँ पहले इनको दूर करो, फिर हरएक बात का निर्णय

मैं कोई इच्छा नहीं करता। मुझे कोई आवश्यकता, कोई भय, कोई आशा, कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

यह 'अ' चक्र एक चरखी है, और इस चरखी पर एक बड़ा सुन्दर रेशमी तागा लटका है, और इस रेशमी तागे के सिरों में दो बाट बँधे हैं, जिनमें से एक १० सेर और दूसरा ६ सेर का है। अब इस ६ सेर के बाट में हम दूसरा ४ सेर का बाट जोड़ते हैं। ६ सेर में चार सेर जोड़ने से दस होते हैं। सो अब एक तरफ़ दस सेर और दूसरी तरफ़ भी दस सेर हो गये। दोनों पलड़े बराबर। वे बिलकुल नहीं डिगेंगे। अस्तु, अब मान लीजिये कि हमने चार सेर का बाट हटा लिया और तब एक ओर १० सेर और दूसरी ओर ६ सेर रह गये। बाट बराबर नहीं हैं। नतीजा क्या होगा? १० सेर का नीचे चला जायगा, और ६ सेर का ऊपर उठेगा। एक पल के बाद हम यह चार सेर का बाट ६ सेर के बाट में जोड़ देते हैं। फिर हम दोनों बोझ दोनों तरफ़ समान कर देते हैं। तब क्या परिणाम होगा? बहुत से लोग कहेंगे कि पलड़े बराबर सध जायेंगे, किन्तु बात ऐसी नहीं है, वे डोलते रहेंगे। पहली दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि बोझों के बराबर हो जाने के एक पल ही बाद गति भी समान हो जायगी।

बनी रहती है। हम देखते हैं कि यदि बाट शुरू में, गति आरम्भ होने के पूर्व, बराबर कर दिये जाते हैं, तो बाट बराबर होने के कारण स्थिरता बनी रहती है। यदि बाट ४ फ़ुट की तेज़ चाल चल चुकने के बाद समान किये जाते हैं, तो बाटों की समानता चाल की तेज़ी में अधिक वृद्धि होने से रोक देगी, और यदि दूसरे पल के अन्त में बाट बराबर किये जाते हैं, तो परिणाम यह होगा कि हाथ लगी चाल ८ फ़ुट होगी और इस तीव्र गति में और तरक़्क़ी न होगी, और तीसरे पल के अन्त में लब्ध तीव्र गति १२ फ़ुट होगी, तथा और आगे चाल में वृद्धि न होगी। पहले पल के अन्त में वेग की तरक़्क़ी वेग-वृद्धि (acceleration) कहलाती है। किन्तु यहाँ हम एक दूसरी ही बात देखते हैं। जब दोनों ओर बाट एक समान कर दिये जाते हैं, तब पलड़ों पर प्रभाव डालने को कोई शक्ति नहीं रह जाती। यदि पलड़ों पर कोई शक्ति (भार) प्रभाव न डालती हो, तो विश्राम या प्रगति की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं उत्पन्न किया जा सकता। विश्राम या प्रगति (हरकत) में कोई परिवर्तन नहीं पैदा होता है। यदि वहाँ पहले की स्थिरता है, और हम भार एक ओर १० सेर तथा दूसरी ओर १० सेर कर देते हैं, और यदि बाटों में एक पल भर प्रगति रही है और तब बाट बराबर किये गये हैं, तो इस क़ानून के अनुसार शुरू की प्रगति बनी रहेगी। इससे मौलिक स्थिरता या पहिले से प्राप्त वेग रुकता नहीं है, किन्तु बाटों की समानता वेग में आगे को परिवर्तन न होने देगी। इस तरह यदि दूसरे पल के अन्त में हम बाट समान कर देते हैं, तो पहिले से प्राप्त वेग वही बना रहेगा। इसी तरह तीसरे पल के अन्त में बाटों की समानता पहिले से प्राप्त १२ फ़ुट की तीव्र गति के वेग में और कोई परिवर्तन न होने देगी।

आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० २

परमेश्वर का अब हम कुछ दूसरे अलङ्कारों में निरूपण करते हैं। विशाल, विशाल क्षीरसागर में, जो समग्र विश्व को व्यापे हुए है, एक सुन्दर रेंगता सर्प या शेषनाग (परमेश्वर का) कोमल बिछौना बनता है, और अपनी देह की परत को मानों इसका एक गद्दा बनाता है। उसके सहस्र फन छत्र का काम दे रहे हैं। ऐसे सागर पर एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर देवी बैठी हुई है, जो इस परमेश्वर की पत्नी है। उसकी देह पारदर्शक है, नेत्र आधे खुले हैं और अधर मुसकराते हैं। वह इस परमेश्वर के चरण धीरे-धीरे दबा रही है। यह सुन्दर मूर्ति एक सुन्दर, शोभायमान कमल पर बैठी हुई है, और उस पर बैठकर वह परमेश्वर के चरण दाब रही है, और देह मर्दन कर रही वा मुट्ठियाँ भर रही है। दोनों के नेत्र मिल रहे हैं। एक दूसरे के नेत्रों को देख रहे हैं। यह पत्नी क्या निरूपण करती है? वह ईश्वरत्व, बुद्धि, कल्याण और आनन्द निरूपण करती है। वह इस परमेश्वर की अपनी महिमा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुक्तात्मा अपनी ही महिमा को हर समय देखा करता है, और वह आत्मा तब स्वतंत्र है, जब कि दुनिया उसके लिये बिलकुल डूबी हुई होती है। सब नातों और सम्बन्धों से परे, सब बन्धनों को तोड़कर, उसे दुनिया से कोई प्रयोजन नहीं होता है।

सागर का अर्थ अनन्तता है। और यह सागर क्षीर का क्यों कहा जाता है? दूध में तीन गुण हैं। वह प्रकाश है, वह सफेद है, जिसका अर्थ कल्याण है, वह बलदायक

हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में परमेश्वर के दो रूप, परमात्मा के दो आकार दिखाये गये हैं। एक सफ़ेद, महान्, प्रभावशाली, सुन्दर, युवा पुरुष, प्रतापी आकार, हिमालय के शिखरों पर बैठा हुआ, ध्यान और विचार में मग्न, आँखें बन्द, दुनिया से बेख़बर, परमानन्द की साक्षात् मूर्ति, दिक़्क़तों और बखेड़ों से दूर, सम्पूर्ण चिन्ता और फ़िक्र से मुक्त है। ऐसा मुक्त कि पूर्ण स्वतंत्र, ऐसा प्राणी कि जिसके लिये दुनिया का कदापि अस्तित्व है ही नहीं। यह है परमेश्वर का एक चित्र। यह चित्र समाधि का है। यह एक स्वच्छन्द, मुक्त आत्मा है। श्वेत तो हिमालय का एक चिह्न है, और अचल मन शान्ति का चिह्न।

इसके साथ उस परमेश्वर की पत्नी है, जो सिर से पैर तक गुलाब के रंग की है। वह इस परमेश्वर के घुटनों पर बैठी हुई है और उसके लिये सदा वनस्पतियाँ तथा अन्य जोशीले रस घोटा करती है। परमेश्वर अपने नेत्र खोलता है और तुरन्त उसकी पत्नी अपने तैयार किये नशीले अर्क़ से भरा हुआ एक कटोरा उसके मुख में लगा देती है, ताकि वह फिर अपनी ध्यानावस्था में निमग्न हो जाय। तब वह उससे सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध में प्रश्न करती है, और वह उन प्रश्नों को उसे समझाता है। वह एक राजा की बेटी है, जिसने इस परमेश्वर के निकट रहने के लिये अपनी सब सुन्दर चीज़ें वह छोड़ चुकी है। परमेश्वर शिव कहलाते हैं, और पत्नी का नाम गिरिजा (पार्वती) है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

उपदेश—भाग

बिना भोजन के मनुष्य की तरह हम आत्मानुभव के लिए भूखे और प्यासे रहते हैं, लालायित रहते हैं, मंत्र जपते हैं, मनकी साँस से बाँसुरी बजाते हैं। इसलिये आप मनकी झील में अगणित स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को ढूँढ़ निकालें, और एक-एक करके उनको कुचल डालें—दृढ़ प्रतिज्ञाएँ करें और गम्भीर शपथें लें। जब आप झील से बाहर निकल आवेंगे, तब जल किसी पीनेवाले के लिए विषैला न रहेगा। गौओं, नारियों, मनुष्यों को पीने दो—निन्दकों का विष ऐसे स्वच्छ जल में बदल जायगा कि जिसका स्रोत ईश्वरानुभव है। (अपने मन में) दुर्बलताएँ तलाश करो और उन्हें निर्मूल कर दो। वासनाएँ एकाग्रता को रोकती हैं, और जब तक विशुद्धता तथा आत्मज्ञान का अस्तित्व न हो, तब तक सच्ची एकाग्रता नहीं हो सकती। पहले आप उसे (वासना को) उखाड़ फेंको, जो एकाग्रता की चेष्टा करते समय आपको नीचे घसीट लाती है। अपने प्रति आप सच्चे बनो। इस देश में विपुल संख्या में औरों से व्याख्यान दिये जाते हैं। हमें अपने आपको उपदेश देना चाहिये। बिना इसके कोई उन्नति नहीं हो सकती।

सोने से पहले बैठ जाइये, और उन दोषों को सामने लाइये जिन्हें हटाना है। इंजील, गीता, उपनिषद् या इसी तरह की सत्पुरुषों के लेखों को पढ़िये। यदि लोभ या शोक का दोष हो, तो कुछ अध्ययन की सहायता से विचारिये कि यह दोष क्यों और

परिणाम भोगने पड़ेंगे। ये क़ानून एक-एक करके सिद्ध किये जायँगे। सिद्ध हो जाने पर मनुष्य नीच इच्छाओं के अधीन नहीं हो सकता।

मलिन इच्छाओं पर एक बार प्रभुता पा जाने पर आप जितनी देर चाहें, एकाग्रता लाभ कर सकते हैं।

न भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों से बचना चाहिये। उपवास प्रायः स्वभावतः आता है, क्योंकि सहज स्वभाव का अनुसरण करना चाहिये, वह चाहे खाने का हो और चाहे उपवास करने का। दासता से बचना चाहिये। स्वामी बनो।

भारत में कुछ दिन, जैसे पूर्णिमा इत्यादि एकाग्रता उत्पादक सिद्ध हुए हैं। उस दिन आप अभ्यास करें, और आप ऐसे दिनों को अवश्य सहायक पाएँगे, यदि आप उस दिन विशेषतः बादाम आदि मग़ज़्यात, रोटी और फल खाएँ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

तीसरा भाग

उत्तरार्द्ध

स्वामी रामतीर्थजी

के

हिन्दी-उर्दू के लेख व उपदेश

ग़ैर मुल्कों के तजरुबे

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सत्य की ही हमेशा जय होती है, झूठ की नहीं। पुराणों में लिखा है कि "लक्ष्मी विष्णु की सेवा करती है, विष्णु के पाँव दाबती रहती है, अर्थात् लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है। लक्ष्मी विष्णु की छायावत् साथी है। विष्णु है, तो लक्ष्मी है। विष्णु नहीं, तो लक्ष्मी भी नहीं है।" यह बात बहुत ठीक है। विष्णु के अर्थ सत्य और धर्म के हैं, लक्ष्मी के अर्थ धन और जय के हैं। सो जहाँ सत्य और धर्म है, वहीं धन और जय है। जहाँ सत्य और धर्म नहीं, वहाँ धन और जय नहीं। वेदों में लिखा है "यतो धर्मस्ततो जयः"। अतएव यदि विष्णु रूपी धर्म की ओर आप बढ़ोगे, तो लक्ष्मी रूपी जय और धन आपकी छाया के समान आपके पीछे-पीछे [illegible] पर विष्णु रूपी धर्म से विमुख होने पर [illegible] लक्ष्मी रूपी जय और धन प्राप्त कर [illegible] सकता। सूर्य्य की ओर पीठ करने से [illegible] कोई भी अपनी अनुगामिनी नहीं कर [illegible] आप भागते चले जाओगे, छाया सर्वदा [illegible] जायगी, और हाथ नहीं आयगी पर [illegible] ओर [illegible] तो उसी समय छाया [illegible] पीछे [illegible] आपको छोड़ नहीं सकता [illegible] लक्ष्मी [illegible] वालों को सर्वदा सत्य [illegible] रखना चाहिए। हमारे हिन्दुस्तान की आजकल [illegible]

है, वह सब पर विदित है। प्लेग राक्षस हजारों आदमियों का सफाया कर रहा है। अकाल लाखों आदमियों का खून चूस रहा है। हैजा, चेचक आदि सैकड़ों बीमारियाँ करोड़ों आदमियों के प्राण ले रही हैं। कहाँ तक कहें, हिन्दुस्तान हर प्रकार से दुःखी है। हिन्दुस्तान की ऐसी शोकमयी दशा क्यों है? इसके उत्तर में राम यही कहेगा कि सत्य और धर्म का ह्रास व ह्रास हुआ है। हिन्दुस्तानियों की सत्य और धर्म पर श्रद्धा नहीं। हिन्दुस्तान में धर्म केवल बोलने के लिये है, बरताव में लाने के लिये नहीं।

अब राम हिन्दुस्तान और अमेरिका का मुकाबला करता है। अमेरिका हिन्दुस्तान के पैर के नीचे है। हिन्दुस्तान * में दाईं ओर से जाते हैं, अमेरिका में बाईं ओर से जाते हैं। हिन्दुस्तान में मन्दिरों या मकानों में जाने से पहिले जूता उतारते हैं, अमेरिका में टोपी उतारते हैं। हिन्दुस्तान में पुरुष घर का मालिक होता है और स्त्री पर हुकूमत करता है, अमेरिका में स्त्री घर की मालिक होती है, पुरुष पर हुकूमत करती है। हिन्दुस्तान में कुत्ता सबसे अपवित्र और गधा सबसे बेवकूफ़ जानवर समझा जाता है, अमेरिका में कुत्ता सबसे पवित्र और गधा सबसे अक़्लमन्द समझा जाता है। वे गधे से बड़ी-बड़ी अक़्ल (बुद्धि) सीखते हैं। हिन्दुस्तान में उस किताब की बिलकुल क़दर नहीं होती, जिसमें कुछ भी दूसरी किताब का प्रमाण न हो, अमेरिका में उसी किताब की प्रतिष्ठा होती है, जो बिलकुल नई हो। हिन्दुस्तान में कोई

---

* दाईं ओर से जाने का रिवाज अमेरिका में और बाईं ओर से जाने का आज भारतवर्ष में अभी थोड़े काल से हुआ है। पहले दाईं ओर से ही जाने का रिवाज भारतवर्ष में और बाईं ओर से चलने का रिवाज अमेरिका में था।

आदमी ऐसा काम नहीं करता या करना चाहता, जिसका नतीजा वह अपनी आँखों के सामने न देख ले, यहाँ तक कि बूढ़े आदमी दरीचा लगाने में भी हिचकिचाते हैं, पर अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ हरएक आदमी काम करता है और फल की इच्छा नहीं रखता। वे अपना फ़ायदा नहीं देखते, किन्तु मुल्क का फ़ायदा देखते हैं। जापान में एक अमेरिकन प्रोफ़ेसर था, वह बहुत बूढ़ा था, बारह भाषायें जानता था। इस आयु में रूसी भाषा पढ़ रहा था। राम ने उससे पूछा कि "आप अब रूसी भाषा पढ़कर क्या करेंगे?" उसने उत्तर दिया "मैंने सुना है कि रूसी भाषा में भूगोल सबसे उत्तम है, सो मैं रूसी भाषा को इस अभिप्राय से पढ़ रहा हूँ कि उस भूगोल को पढ़ूँ, और उसका अनुवाद अपनी भाषा में करूँ, ताकि हमारी जबान में भी अच्छा भूगोल हो, और हमारे मुल्क को फ़ायदा पहुँचे।" वह फल की इच्छा नहीं रखता था, पर इस बुढ़ापे में भी जो वह दूसरी भाषा पढ़ने का कड़ा परिश्रम कर रहा था, वह केवल अपने मुल्क के उपकार व फ़ायदे के वास्ते था। क्या हिन्दुस्तानी कभी अपने मुल्क के लिये ऐसा परिश्रम करता है? और फिर इस बुढ़ापे में? यहाँ तो मरने का बड़ा भय रहता है, इस मुल्कवालों (हिन्दुस्तानियों) को अकसर यह कहते सुनते हैं "मरना है, किसके लिये करना है?" तो भला हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो?

हिन्दुस्तान में कोई आदमी अपने पूर्व-पुरुषों से आगे बढ़ना ही नहीं चाहता, और जो आगे बढ़ता है, वह नास्तिक समझा जाता है, अर्थात् लोगों में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती है, अपने बाप-दादों की लकीर का फ़क़ीर न रहने से कलंकित किया जाता है; पर अमेरिका में उस आदमी की बिलकुल क़दर नहीं होती, जो अपने बाप से ज़रा भी आगे न बढ़ा हो

नैसर्गिक विचार की भूमिका है। अहो! हिन्दुस्तानियो! आपकी कैसी शोचनीय दशा है? आपकी आँख कब खुलेगी? क्या कभी आपके हृदय में इन देव-तुल्य मनुष्यों के समान अपने मुल्क (स्वदेश) की भलाई, उन्नति और उपकार का ख्याल पैदा होगा? क्या कभी आप लोग भी इन जर्मनों के समान अपने देश में विद्याओं का महाप्रकाश करने की इच्छा से इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में जाकर वहाँ से विद्या का प्रकाश लाओगे?

पहले जब हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्कों में जाने के लिये रोक नहीं होती थी और यहाँ प्रकाश था, तब हिन्दुस्तानी अपने मुल्क के प्रकाश से अन्य मुल्कों को प्रकाशित करते थे। पर जब से बाहर आने-जाने का मार्ग बंद कर दिया गया, तब प्रकाश भी बन्द हो गया और अँधेरा फैल गया। यहाँ से प्रकाश क्यों चला गया? प्यारे! एक मकान के भीतर, जिसमें प्रकाश आने-जाने के लिये खिड़की और दर्वाज़े हों, बाहर के प्रकाश (सूर्य्य की किरणों) से जब खूब प्रकाश हो गया हो, और तुम इस अभिप्राय से उसकी खिड़की और दर्वाज़े बंद कर दो कि भीतर का प्रकाश बाहर न जाने पावे, तो क्या उस मकान के भीतर प्रकाश कभी ठहर सकता है? कभी नहीं। ज्यों ही मकान का दर्वाज़ा और खिड़कियाँ बन्द होंगी, मकान के अन्दर अँधेरा फैल जायगा, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हो जायगा। बस, हिंदुस्तान की भी यही दशा हुई। बाहर आने-जाने के सब दर्वाज़े बंद कर दिये गये, सो नतीजा यह हुआ कि यहाँ जो कुछ प्रकाश था, वह भी बंद गया, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हुआ, और ुस्तान में अँधेरा फैल गया। शास्त्रों में लिखा है कि विद्या-रत्न नीच से भी लेना चाहिये और सबको देना चाहिये।

जितनी ही विद्या तुम दूसरों को दोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या बढ़ेगी और तरक़्क़ी पायेगी, किन्तु अफ़सोस है कि हिन्दुस्तानी दूसरों को विद्या देने में निहायत संकोच करते हैं और दूसरों से विद्या लेना भी नहीं चाहते। दूसरों की विद्या न सीखी जाय, इसके लिये समुद्र-यात्रा का निषेध हुआ। इस दशा में विद्या-रूपी प्रकाश का किस प्रकार प्रकाश रहता? अहो! खुदग़र्ज़ी क्या किसी और चीज़ का नाम है? वेद और शास्त्र, जिनसे परमात्मा-विषयक ज्ञान होता है, किसी अन्य-देशीय को न पढ़ाये जायँ, गैर मुल्कों में उनका प्रचार न किया जाय, क्या इससे परमेश्वर प्रसन्न होगा? क्या अन्य देश-निवासी परमेश्वर के बनाये मनुष्य नहीं हैं? परमात्मा ने सच्चे ज्ञान के भंडार (वेदों) को आप लोगों के पास सौंपा, ताकि मनुष्यों को उसका यथार्थ ज्ञान हो, और आप लोग अपना कर्तव्य भूल कर उनको अपनी ही सम्पत्ति समझने लगे, तो बताइये कि ईश्वर का कोप आप पर न हो, तो क्या हो? देखो, ईसाई लोग बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, उनकी नज़र में बाइबिल के अनुकूल न चलने से किसी को मुक्ति नहीं हो सकती, बाइबिल ही उनकी समझ से संसार के परित्राण करने का एकमात्र अवलम्बन या उपाय है, तो देखिये, ये लोग उसके प्रचार के लिये कितनी तकलीफ़ें उठाते हैं, कितनी जानें खोते हैं, कितने रुपये ख़र्च करते हैं। ये उदार मनुष्य संसार को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा नहीं करते हैं, किन्तु संसार की भलाई की इच्छा से ही ऐसा करते हैं। ईश्वरीय ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। ओहो! परमात्मा उन पर ख़ुश न हो, तो किस पर ख़ुश हो? क्योंकि ईश्वर ने जो कुछ जैसा और जितना ज्ञा उनको दिया है, वे उसको जैसे का तैसा दूसरों को देने

संकोच नहीं करते हैं, किन्तु तकलीफ़ उठाकर, उनको विद्या पढ़ाकर, रुपया खर्च कर यहाँ तक कि प्राण गवाँकर भी ज्ञान देते हैं। पर हिन्दुस्तानियों ! तुम्हारे पास जो कुछ सौंपा गया है, क्या तुम भी इन जगत्-हितैषी ईसाइयों के समान उसका संसार में प्रचार कर रहे हो ? यदि नहीं, तो क्या ईश्वर तुम पर ख़ुश होता होगा ? यदि कहो कि क्या मालूम कि ईश्वर ख़ुश होता है कि नहीं, तो क्या अभी तक तुम समझ नहीं सके कि ईश्वर का तुम पर कितना कोप हो रहा है ? राज्य गया, लक्ष्मी गई, विद्या गई, प्रतिष्ठा गई, बल गया, पौरुष गया, और सर्वस्व गया, तो भी न समझे, तो अकाल आया, प्लेग वा महामारी आई; हैज़ा आया, तो क्या अब भी समझ में नहीं आता कि ईश्वर हम पर कोप कर रहा है ! प्यारो ! सम्हलो, अभी सम्हलने का समय है।

परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने सबको बनाया है। और यदि हम परमेश्वर को ख़ुश करना चाहें, तो हमको चाहिये कि हम प्राणी-मात्र से प्रेम करें। भाई के मारने या उसके साथ वैर करने या उसको नफ़रत करने से बाप कभी ख़ुश नहीं हो सकता। तब क्या किसी मनुष्य को नफ़रत करने से या नीच समझने से परमेश्वर, जो सबका पिता है, कभी ख़ुश हो सकता है ? कदापि नहीं। ख़ाली मुँह से यह बात कहते जाना कि हम परमेश्वर को मानते हैं, उससे प्रेम करते हैं, काफ़ी नहीं है। आपको चाहिये कर्म द्वारा इसका सबूत दो। सबूत यही है कि आप मनुष्य-मात्र से प्रेम करें, प्राणी-मात्र से प्रेम करें, जगत्-मात्र से प्रेम करें, सबको बराबर और अपने ही बराबर समझें, अर्थात् यह ख़्याल रक्खें कि जो कुछ मैं हूँ, वह वे हैं, और जो कुछ वे

हैं, वह मैं हूँ, अर्थात् मैं और वे अलग-अलग कुछ नहीं, किन्तु एक ही हैं। चाहे कोई किसी जाति का हो, किसी देश का हो, किसी रंग का हो, इसकी परवाह मत करो। जाति-धर्म, मजहब, देश और रंग से कुछ मतलब नहीं, आपको तो ईश्वर को खुश करने से मतलब है, अर्थात् अपना कर्तव्य पालन करना है। हाथ शरीर के सब अंग और प्रत्यंगों को सहायता पहुँचाता है। पैरों को, उपस्थ इन्द्रिय को या और किसी अंग को जब तकलीफ होती है, तब फौरन् हाथ उनकी सहायता के लिये पहुँच जाता है। हाथ यह कभी विचार नहीं करता है कि पैर मुझसे नीचा है, गुदा आदि इन्द्रियाँ अपवित्र हैं, मुँह में थूक है, नाक में सींड है, कान के अन्दर मैल है, वह सम दृष्टि से सबको सहायता पहुँचाता है, और सबकी तकलीफों को दूर करने का प्रयत्न करता है। यह कभी ख्याल नहीं करना चाहिये कि यह मुझसे नीच है या भिन्न मजहब का है। अमेरिका में रविवार के दिन एक साहब से राम की मुलाक़ात हुई। उसकी मेम दूसरे मजहब की थी, और वह दूसरे मजहब का था (ईसाइयों के भी कई मजहब हैं, कोई रोमन कैथोलिक और कोई प्रोटेस्टेंट कहलाते हैं), अर्थात् उसकी मेम (स्त्री) रोमन कैथोलिक थी और वह प्रोटेस्टेंट था। वह अपने-अपने गिर्जों में तो गये, पर साहब पहले अपनी मेम को उसके गिर्जे में पहुँचा आया, तब अपने गिर्जे में गया, फिर अपने गिर्जे से अपनी मेम को लेने के लिये उसके गिर्जे में गया, और तब वह साथ-साथ घर आये। राम ने उस साहब से पूछा कि तुम स्त्री-पुरुष भिन्न मजहब के हो, कैसे एक दूसरे से प्रेम करते हो? उसने उत्तर दिया— "मजहब का ईश्वर के साथ सम्बन्ध है और इसका (मेरी मेम का) और मेरा इस दुनिया का सम्बन्ध है। ईश्वर

सामने अपने कर्मों का उत्तरदाता मैं हूँ, और वह अपने कर्मों की उत्तरदात्री है, सो हमको विवाद करने से क्या मतलब? हम दुनिया के सम्बन्ध से आपस में प्रेम करते हैं। साहब ने ठीक उत्तर दिया। ऐसा ही होना चाहिये। परन्तु हिन्दुस्तान में यदि स्त्री वैष्णव है और पुरुष शैव, तो उनके बीच कभी प्रेम नहीं होता है। अहो, कैसा अनर्थ है!

आप लोग (हिन्दुस्तानी) अन्य देशवासियों को नीच, म्लेच्छ आदि नामों से संबोधन करते हो और उनसे नफ़रत करते हो; पर राम कहता है कि जिनको आप नीच समझते हो, वे उत्तम हैं, जिनको म्लेच्छ कहते हो, उनका हृदय पवित्र है, और वे आपसे प्रेम रखते हैं। उन लोगों में और भी इतना विशेष गुण है कि उनका देशानुराग इतना प्रबल है कि वे अपने देश के लिये ख़ून बहा देने को हर समय तैयार रहते हैं। एक जापानी जहाज़ में कुछ हिन्दुस्तानी लड़के सफ़र कर रहे थे, वे लोग चौथे दर्जे में थे। चौथे दर्जे-वाले मुसाफ़िरों के लिए हिन्दुस्तानियों के मुआफ़िक़ खाने का उचित सामान न था। वे लोग भूखे ही रह गये। इतने में एक जापानी लड़के की नज़र उन पर पड़ गई, उसको मालूम हुआ कि ये बेचारे हिन्दुस्तानी भूखे हैं। उस उदार, दयालु जापानी लड़के से न रहा गया, वह फ़ौरन फ़र्स्ट क्लास (पहिले दर्जे के) कमरे में गया और वहाँ से फल और मेवे अपने पैसे लगाकर ले आया, और उनको उन भूखे हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दिया। वे हिन्दुस्तानी लड़के बड़े ख़ुश हुए, और उस कृपालु जापानी लड़के को क़ीमत देने लगे, परन्तु जापानी लड़के ने उचित आश्वासन और मधुर वचन द्वारा सबका सत्कार करके क़ीमत लेने से इन्कार किया, और फिर उसी तरह चार-पाँच रोज़ तक उनको बराबर मेवे और फल देता

गया, और क़ीमत लेने से बराबर इन्कार करता गया। जब उनके जुदा होने का वक्त आया, तो हिन्दुस्तानी लड़के उसका शुक्रिया (धन्यवाद) अदा करने लगे, और फिर क़ीमत देने लगे। उस जापानी लड़के ने फिर इन्कार किया और नम्रता-पूर्वक उन हिन्दुस्तानी लड़कों से कहा कि "प्यारे! मैं दाम तो नहीं लेता, मगर एक अर्ज़ करता हूँ, यदि आप उसको स्वीकार करो तो।" हिन्दुस्तानी लड़कों ने कहा—"आप फ़र्माइये तो।" जापानी लड़के ने कहा कि "मेरी यही प्रार्थना है कि जब आप लोग हिन्दुस्तान में जाओ, तो यह बात न कहना कि जापानी जहाज़ में हमको कष्ट हुआ था, वहाँ खाने का प्रबन्ध ठीक नहीं था; क्योंकि आप लोग ऐसा कहेंगे, तो हमारे मुल्क की बदनामी होगी।" अहो! कैसी मुहब्बत है! कैसा विमल देशानुराग है! वह लड़का न उस जहाज़ का मालिक था, और न उस जहाज़ में नौकर था। पर वह जहाज़ [illegible] का था, वह भी [illegible] देश का रहनेवाला था, इसी [illegible] से उस जहाज़ की बदनामी को वह अपनी और अपने देश की बदनामी समझता था यही सच्चा वेदान्त है, इसी को [illegible] करते हैं। क्या कोई हिन्दुस्तानी कभी [illegible] क्या किसी हिन्दुस्तानी ने [illegible] वेदान्त [illegible] आपने [illegible] को इस [illegible] की [illegible] यहाँ [illegible] की [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] स्त्न-जापान [illegible] जापान

वालों को अपने किसी जहाज़ के डुबाने की ज़रूरत पड़ी। यह निश्चय था कि जो इस जहाज़ को डुबाने जावेंगे, वे भी डूबेंगे, क्योंकि उनके बचाने के लिए कोई उपाय नहीं था, तो भी जहाज़ के कप्तान ने एक नोटिस अपनी पल्टन में फिराया कि "हम अपने जहाज़ को डुबाना चाहते हैं, मगर जो उसको डुबाने को जाएगा, उसके बचने का उपाय नहीं, सो हम पर भी जिनको वहाँ जाना मंज़ूर हो, वह दरख्वास्त करे।" कप्तान का दफ्तर दरख्वास्तों से भर गया। ऐसा कोई जापानी नहीं था, जिसने दरख्वास्त न दी हो। बाज़-बाज़ जापानियों ने अपनी अँगुली को काटकर खून से अर्ज़ी लिखी, बाज़ों ने ऐसी धमकी की अर्ज़ी दी कि "यदि हमको न भेजा गया, तो हम फाँसी लगाकर मर जावेंगे।" अहो! मरने के लिए ऐसी उत्कंठा क्यों? प्यारो! उस जहाज़ को डुबाने से जापान को लाभ पहुँचता था, मुल्क के लाभ के मुक़ाबिले में वे अपने प्राण बिलकुल कुछ नहीं समझते थे। इधर हिन्दुस्तान में "आप मरा, तो जग मरा" की कहावत है। अगर किसी हिन्दुस्तानी से यह कहा जाय कि तुम्हारे मरने से हिन्दुस्तानियों को राज्य मिलता है, तुम मरना स्वीकार करोगे? तो क्या जवाब मिलेगा? यह कि हम मर ही जाएँगे, तो राज्य आने से फ़ायदा ही क्या होगा? उफ़् (हा शोक!)! कैसा घृणित स्वार्थ भरा हुआ है! प्लेग से दो लाख से ऊपर आदमी हरएक महीने में मर रहे हैं, हैजा आदि अन्य बीमारियों का हिसाब अलग है, पर हिन्दुस्तान में ऐसा १२ माई का लाल नहीं है, जो अपने इस क्षण-भंगुर शरीर अपने देशोपकार-रूपी यज्ञ में हवन कर दे, अर्थात् देश की भलाई में अपने प्राण न्योछावर कर दे, या पसीना ही बहाये, या थोड़ी तकलीफ़ उठाए। अपने मुल्क के लिये प्राण न्योछावर

करना एक तरफ़, पसीना बहाना एक तरफ़, थोड़ी तकलीफ़ उठाना एक तरफ़ रहा, पर हम लोगों से देश की बुराई न हो, तो उतनी ही ग़नीमत है। अभी एक हिन्दुस्तानी लड़का जापान में पढ़ रहा था। एक दिन वह स्कूल-लायब्रेरी (पुस्तकालय) से एक किताब अपने घर पढ़ने को लाया। उस किताब में एक नक़्शा था। जिसका बनाना उसको अत्यंत आवश्यक था। पर उस लड़के ने उस नक़्शे के बनाने की तकलीफ़ उठानी पसंद नहीं की और उस किताब से वह वर्क़, जिस पर नक़्शा बना हुआ था, फाड़कर अपने पास रख लिया। कितने दिन के पश्चात् एक जापानी लड़के ने वह फटा हुआ वर्क़ देख लिया। उसने प्रिंसिपल से रिपोर्ट कर दी। और यह क़ानून पास हो गया कि किसी हिन्दुस्तानी लड़के को लायब्रेरी से कोई किताब घर पर पढ़ने के लिये न दी जाय। अफ़सोस! अपने ज़रा स्वार्थ के लिये या ज़रा अपनी तकलीफ़ को बचाने के लिये, उस हिन्दुस्तानी लड़के ने सारे [illegible]

अर्ज़ी मंज़ूर की और मुसलमानी पल्टन को नोटिस दे दिया कि जो सिपाही १५) रु० में रहना चाहें तो रहें, अन्यथा अपना नाम कटा लेवें। उस मुसलमानी पल्टन के किसी सिपाही ने १५) रु० माहवारी में रहना मंज़ूर नहीं किया, और सबने अपने नाम कटा लिये। पश्चात् उन्होंने विलायत तक इस बात की लिखा-पढ़ी की, मगर नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। भला सरकार को भारी खर्च करने से क्या मतलब था, जब कि थोड़े से खर्च में सरकार का काम चल जाता था। मज़बूत और बहादुर सिपाही भी मिल गये, खर्च भी कम हुआ, तो सरकार ऐसी बेवक़ूफ़ क्यों बनती, जो उन मुसलमान सिपाहियों की अर्ज़ी पर ध्यान देती? ग़रज़, यहाँ सिक्ख सिपाही भरती हुए और मुसलमान सिपाही सब बर्ख़ास्त हुए। नाउम्मेद (हताश) होकर वे मुसलमान सिपाही आफ्रिका में मुल्ला के देश में चले गये और उसकी पल्टन में भरती होकर उसको अँगरेज़ों के विरुद्ध भड़काने लगे। मुल्ला उनकी पट्टी में आ गया और उसने अँगरेज़ों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी। अँगरेज़ों ने हांगकांग से यही पल्टन सिक्खों की उनके साथ लड़ने के लिये भेजी। उन मुसलमान सिपाहियों को मालूम हो गया कि उनके मुक़ाबले में वही सिक्ख पल्टन आई है, सो पुराना बैर लेने के जोश में, उन्होंने ख़ूब बहादुरी से लड़ना शुरू किया। इस सिक्ख पल्टन के कितने ही सिपाही मारे गये, कितने ही घायल हुए, कितने ही उस रेगिस्तान की गरमी को न सह सकने के कारण मर गये, कितने ही बीमार हुए। मतलब यह कि प्रायः सभी तबाह हुए। प्यारो! देखो, जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। इन सिक्ख सिपाहियों ने अपने ५) रु० के स्वार्थ से उन मुसलमान सिपाहियों का ४५) रु० का नुक़सान किया था, उसका इनको यह फल मिला कि मारे

गये, मर गये, ज़खमी हुए, बीमार हुए और तबाह हुए। उफ़् (हा शोक)! स्वार्थ कैसी बुरी बला है! यह (बला) पहले तो दूसरों को नुक़सान पहुँचाती है, और फिर उसका अपना नाश करती है, जो इससे काम लेता है। प्यारो! जैसे इस शरीर के जीवन के लिये हाथ, पैर, नाक, आँख, कान, दाँत, जिह्वा आदि सभी इंद्रियों की आवश्यकता है, वैसे ही इस संसार के जीवन के लिये भिन्न-भिन्न जाति के सभी मनुष्यों की चाहे वह हिन्दू है, या मुसलमान है या ईसाई है, या यहूदी अथवा पारसी है, आवश्यकता है। तब हम दुःख पहुँचावें, तो किसको पहुँचावें? नीच समझें, तो किसको समझें? स्वार्थ करें, तो किससे करें? देखो, यदि आँख यह कहे कि देखती तो मैं हूँ और लाभ हाथ वग़ैरह का होता है, इसलिये देखना बंद कर दूँ: हाथ कहे कि काम तो मैं करता हूँ और मज़ा मुँह उठाता है, इसलिये मैं काम करना छोड़ दूँ; पैर यह कहे कि सारे शरीर का बोझ मैं लिये फिरता हूँ, और ये सब मज़े में रहते हैं, इसलिये फिरना छोड़ दूँ: इसी

और इंद्रियाँ भी तकलीफ़ उठायेंगी। जब यह बात बिलकुल सिद्ध है कि स्वार्थ स्वार्थी को ही कालान्तर में अधिक नुक़्सान पहुँचाता है, तो स्वार्थ से काम क्यों लेना चाहिये? हिन्दुस्तानी लड़के ने स्वार्थ से किताब का वर्क़ (पत्रा) फाड़ा था, उसने ख़ुद नुक़्सान उठाया और अपने मुल्क को नुक़्सान पहुँचाया। सिक्ख पलटन ने अपने स्वार्थ के लिये मुसलमान सिपाहियों को नुक़्सान पहुँचाया था, वे ख़ुद तबाह हुए। कहाँ तक कहें, स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ के लिये ख़ुद नुक़्सान उठाया और मुल्क को कितना नुक़्सान पहुँचाया है। इस बात की सैकड़ों मिसालें हिन्दुस्तान के इतिहास में मौजूद हैं। कौरव-पांडवों का सत्यानाशी युद्ध होना, मुसल- ं का हिन्दुस्तान में राज्य होना, शाहजहाँ के लड़कों का ... में लड़ना, मुसलमानी बादशाहत का नाश होना, अँगरेज़ों का हिन्दुस्तान में राज्य की जड़ जमाना, मरहठों का क्षय, सिक्खों का नाश, अँगरेज़ों का तमाम हिन्दुस्तान का बादशाह होना, इत्यादि इन सब बातों पर यदि नज़र डालोगे, तो मालूम हो जायगा कि हम हिन्दुस्तानी लोगों के स्वार्थ के कारण यह सब कुछ हुआ है। अगर हम लोगों में स्वार्थ न भरा हुआ होता, तो हिन्दुस्तान आज परदेशियों के पाँव पर न लोटता! आह! स्वार्थ ने आपको किस दशा से किस दशा को पहुँचा दिया है? स्वर्ग से आपको रसातल में फेंक दिया, ...न... से आपको हैवान (पशु) बना दिया, शेर से आपको ...द बना दिया है। तो क्या प्यारो! अब भी आप उसको ... छोड़ोगे?

हिन्दुस्तान में स्वार्थ का हमेशा से घर नहीं है। यदि आप अपने पूर्व पुरुषों के जीवन-चरित्र पर एक बार दृष्टि डालें, तो मालूम हो जायगा कि जिन ऋषियों की आप औलाद (सन्तान)

हैं, वे कैसे निःस्वार्थी होते थे। दूसरे की भलाई के लिये, दूसरे के उपकार के लिये, वे महात्मा कैसे तन-मन-धन न्योछावर करते थे ? और अपनी जान की भी परवाह नहीं करते थे। शरीर का मांस, शरीर की हड्डी तक दूसरों की भलाई के लिये दे देते थे। जब तक हिन्दुस्तान में ऐसे पुरुष होते रहे, तब तक हिन्दुस्तानी लोग चक्रवर्ती राज्य भोगते रहे, तब तक हिन्दुस्तान संसार में शिरोमणि गिना जाता रहा। पर जब से इस स्वार्थरूपी बला ने हिन्दुस्तान को घेरा है, तब से हिन्दुस्तान का पलड़ा उलट गया। सो यदि आप फिर सम्हलना चाहते हैं, तो एक दम से इस स्वार्थ को हिन्दुस्तान से निकाल दीजिए। मरते तो सब हैं, किन्तु हम लोग सिर्फ़ कालवश ही मरते हैं, और प्रकार से हम मरना नहीं जानते। मरना जानते हैं जापानवाले, अमेरिकावाले और योरोपवाले, सो हम लोगों को भी उनसे मरना सीखना चाहिए। अमेरिका में एक बार साइंस की तरक्क़ी के लिये आवश्यकता हुई कि एक आदमी ज़िन्दा चीरा जाय, ताकि यह मालूम हो कि खून की हरकत किस वक़ किस नस में कैसी होती है। मरे हुए आदमी को चीरने से यह बात मालूम नहीं हो सकती थी, क्योंकि मरे हुए आदमी में खून की हरकत नहीं होती। सो एक आदमी इस बात के लिए तैयार [illegible] आँख के [illegible] आदमी [illegible] ने अपने [illegible] [illegible] [illegible] आदेगा। [illegible] शरीर [illegible] को सी[illegible]

जाएँगे, जिसको बिना सीखे ये लोग दूसरे के शरीर व आँख को पूरा-पूरा फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते हैं, तब ये लोग पूरा-पूरा फ़ायदा पहुँचा सकेंगे, और हमारा शरीर व आँख जिनसे अभी तक केवल हमारा ही फ़ायदा हुआ है, अब से प्रत्येक आदमी के शरीर और आँख के फ़ायदे के लिये होंगे, अर्थात् हमारा शरीर और आँख सबके शरीर और आँख के साथ मिल जाएँगे। अहो! क्या ही उत्तम ज्ञान है। प्यारो! आपको भी यह ज्ञान सीखना चाहिए। जब तक आपको ऐसा ज्ञान नहीं होता, आपकी हरगिज़ तरक़्क़ी नहीं हो सकती।

यह बात भी नहीं है कि वे लोग मनुष्यों से ही प्रेम करते हैं, किन्तु मांसाहारी होने पर भी वे प्राणी-मात्र से प्रेम करते हैं। अमेरिका का प्रेसिडेन्ट (राष्ट्रपति) एक बार दरबार को जाता था। रास्ते में उसने देखा कि एक सुअर कीचड़ में फँसा हुआ है। वह सुअर निकलने की जितनी ही ज्यादा कोशिश करता था, उतना ही वह अधिक कीचड़ में फँसा जाता था। प्रेसिडेन्ट से न रहा गया, वह दरबारी कपड़ों सहित, जिनको वह पहरे हुए था, कीचड़ में कूद पड़ा और सुअर को निकाल लाया। पश्चात वह कीचड़ से भरे हुए कपड़ों को पहिने हुए ही दरबार में चला गया। राष्ट्रपति की यह दशा देखकर दरबारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे राष्ट्रपति से नम्रता-पूर्वक इस विषय में दर्याफ्त करने लगे। राष्ट्रपति ने सारा क़िस्सा बयान किया। दरबारी लोग बड़े खुश हुए और हज़ार मुख से प्रेसिडेन्ट साहब की प्रशंसा करने लगे। कुछ कहने लगे कि हमारे प्रेसिडेन्ट साहब ऐसे मेहरबान (कृपालु) हैं सुअर पर भी मेहरबानी (कृपा) करते हैं। और कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ। प्रेसिडेन्ट ने कहा कि मेरी झूठमूठ प्रशंसा क्यों करते हो; मैंने सुअर पर दया नहीं की, किन्तु उसको

में बेतरह फँसा हुआ देखकर मुझे दर्द हुआ था, मैंने
र्द को मिटाया है, मैंने सुअर के साथ भलाई नहीं की
न्तु अपने साथ भलाई की है। क्योंकि उसके फँसने पर
ुःख मुझे हुआ था, वह उसको निकालने से निकल गया
त् दूर हो गया। अहा! सच्चे वेदान्त का यह क्या ही
त नमूना है कि प्राणी-मात्र के दुःख को अपना दुःख
कना, और प्राणी-मात्र पर दया करने से अपने ऊपर दया
समझना, और प्राणी-मात्र का दुःख दूर करने से अपना
दुःख दूर समझना। क्या कोई हिन्दुस्तानी राजा, रईस,
ीर होता, तो वह उस सुअर को कीचड़ से निकालता?
ी नहीं। तो विचार करो कि 'प्राणी-मात्र पर दया करना'
आपका मुख्य धर्म है, सो आप अपने इस उदार धर्म से
तना भ्रष्ट हुए हो? धर्म-भ्रष्ट तो हुए, पर धर्म-भ्रष्ट होने
जो-जो सजा मिलती है, वह प्यारे! आपको मिल रही है।
र तब तक इस सजा से आप छुटकारा नहीं पा सकते,
व तक कि फिर उस उदार धर्म (प्राणी-मात्र पर दया करने)
आप अपना आचरण नहीं बनाते।

के माल पर महसूल मुआफ़ हुआ। अँगरेज डॉक्टर ने अपने फ़ायदे पर ख़्याल न किया, किन्तु अपने मुल्क के फ़ायदे पर किया। यदि वह अपने फ़ायदे पर ख़्याल करता और बादशाह के भारी इनाम को ले लेता, तो थोड़े दिनों के लिये वह अमीर हो जाता; पर जब उसने मुल्क का ख़्याल किया, तो उसका सारा मुल्क ही अमीर हो गया। क्या हिन्दुस्तानी भाई से कभी यह उम्मेद हो सकती है? ओह! उन लोगों में कैसा स्वाभाविक वेदान्त है। तब वे लोग तरक़्क़ी न करेंगे, तो कौन करेगा? इधर हिन्दुस्तानियों पर तो ठीक यह मिसाल चरितार्थ होती है कि एक साधु ने किसी मनुष्य को एक वस्तु दी। उस वस्तु का यह गुण था कि वह मनुष्य उस वस्तु से जो कुछ माँगेगा, वह उसको मिल तो अवश्य जायगा, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला करेगा। उस मनुष्य ने धन माँगा, हाथी-घोड़े माँगे, गाय-भैंस माँगी, और जो कुछ माँगा, वह सब उसको मिल गया, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला। पड़ोसी को दूना मिलने पर वह बहुत जलता रहा। एक दिन वह यह बात सोचता रहा कि इस वस्तु से क्या माँगें, जो पड़ोसी को दूना मिलने पर उसका अधिक नुक़्सान हो। सोचते-सोचते उसके ख़्याल में यह बात आई कि अपनी एक आँख फूट जाय, इसलिये यही माँगना चाहिये कि मेरी एक आँख फूट जाय, क्योंकि तब पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जायँगी। उसने ऐसा ही किया। उसकी एक आँख और पड़ोसी की दोनों आँखें फूट गईं, फिर उसने अपने एक हाथ और एक पाँव टूटने के लिये उस वस्तु से अर्ज़ की। उसका एक हाथ और पाँव टूट गया और उसके पड़ोसी के दोनों हाथ और पाँव टूट गये। इत्तफ़ाक़ से उसको लक़वा हुआ, और उसके रहे-सहे हाथ-पैर भी टूट गये, और आँख भी फूट गई।

तब उसने उस वस्तु से दोनों हाथ, पैर और आँखें माँगी, पर यह प्रार्थना अस्वीकार हुई, क्योंकि पड़ोसी को उससे दूना मिलना था, मगर उसके चार हाथ, पाँव और आँखें नहीं थीं। तब उसने लाचार होकर अपनी एक आँख, हाथ, पाँव के अच्छे हो जाने की प्रार्थना की, यह स्वीकार हुई। उसके एक हाथ-पाँव और आँख अच्छी हो गई और पड़ोसी के दोनों। पड़ोसी जैसा का तैसा हो गया, मगर उस कमबख़्त (दुर्भागी) की एक आँख फूटी की फूटी रह गई, और एक हाथ-पाँव टूटे के टूटे ही रह गये। सो प्यारों! विचार करो, जो अपने पड़ोसी की बुराई करता है, उसके लिए ख़ुद बुरा होता है। पड़ोसी अपने मुल्कवालों को कहते हैं, सो अपने मुल्क की बुराई नहीं करनी चाहिये। बाइबिल में लिखा है कि अपने पड़ोसी को अपने बराबर प्यार करो, यद्यपि आपके शास्त्रों में और भी उदारता पाई जाती है, क्योंकि उनमें सारे जगत् को अपने बराबर प्यार करना लिखा है। बाइबिल के माननेवाले तो बाइबिल में लिखी हुई बात को अक्षर-अक्षर मानते हैं, और आप लोग अपने शास्त्रों में लिखी हुई इस बात को कि जगत् को अपने बराबर प्यार करो, एक हिस्सा नहीं मानते, यह कितनी लज्जा की बात है? प्यारों! जगत् को अपने बराबर प्यार नहीं कर सकते हो, तो अपने मुल्क को तो अपने बराबर प्यार किया करो। मुल्क को नहीं कर सकते हो तो अपने कुटुम्ब को तो प्यार करो। यह क्या बात है कि आपने अपने कुटुम्ब ही में भेद कर रक्खा है। अपने कुटुम्ब से भी अगर आप भेद न रखते, तो आप एकदम इतना नीचे न गिरते और आपकी दशा का चक्र एकाएक ऐसा पलटा न खाता।

भेद-भाव (द्वैत भाव) उन्नति के मार्ग में बड़ा ही अनिवार्य

से अमेरिका आदि मुल्कोंवाले आशातीत लाभ उठाते हैं। गधा और सुअर, जो हिन्दुस्तान की नजर से बिलकुल घृणित हैं, अमेरिका में बड़े काम आते हैं। मैला, जिसकी तरफ़ नजर पड़ने से ही क़ै (वमन वा उल्टी) हो जाती है, अमेरिका में अच्छी व्यापारिक चीज है। हड्डी, जिसके छू जाने-मात्र से स्नान की जरूरत होती है, इतने फ़ायदे की चीज है कि सारी दुनिया को लाभ पहुँच रहा है। इसकी खाद जिस खेत में पड़ती है, वहाँ चौगुनी फ़सल पैदा होती है; इससे जो फ़ास्फ़ोरस निकलता है, वह संसार को लाभ पहुँचा रहा है। दियासलाई इसकी बनती है, और पुष्टिकारक उत्तम दवा भी इसी से बनती है। बाल जिसको तुम तुच्छ (नाचीज़) समझकर फेंक देते हो, उससे अमेरिका में खूब पैसा पैदा होता है। इसी प्रकार सब चीजें जो हिन्दुस्तान की नजर से घृणित, अपवित्र और अयोग्य समझी जाती हैं, उनसे दूसरे मुल्कवाले खूब फ़ायदा उठाते हैं, और उनसे खूब कमा लेते हैं। उन मुल्कों में जब ऐसी-ऐसी चीजों से भी फ़ायदा उठाते हैं और काम लेते हैं, अफ़सोस, हिन्दुस्तानी तो साधू लोगों से भी काम लेना नहीं जानते! हजारों, लाखों साधू पड़े हुए हैं, यदि उनसे काम लेते, अथवा उनसे फ़ायदा उठाने की बुद्धि हिन्दुस्तान को होती, तो हिन्दुस्तान का बड़ा भारी उपकार हो जाता।

एक समय था, जब हिन्दुस्तानी लोग मनुष्यों के अलावा जानवरों से भी मनुष्य का काम ले लेते थे। भगवान् रामचन्द्रजी ने बंदरों की सेना बनाई थी, और ऐसी कामयाबी (सफलता) हासिल की थी कि आजकल के हिन्दुस्तान के मनुष्यों की सेना से भी वह कामयाबी हासिल नहीं होती। यदि रामचन्द्रजी बंदरों को बंदर कहकर ही ख्याल न करते और उन

सहायता नहीं ले सकते, जब तक कि उनसे भेद रखते हो, या प्रेम नहीं करते, अर्थात् उनको अपने ही बराबर नहीं समझते। और तब तक आपका भेद दूर नहीं होगा, उनसे प्रेम नहीं होगा, और उन सबको अपने बराबर समझना संभव नहीं होगा, जब तक कि ब्रह्म-विद्या का प्रकाश आपके हृदय में नहीं होता। सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्रकाश होने से ही आप हरएक चीज से प्रेम करने लगोगे, और उनमें जो गुण हैं, जिनके बिना आपकी उन्नति का मार्ग अगम्य हो रहा है, उनको लेने में संकोच नहीं करोगे, तब आपकी उन्नति बेरोक-टोक होती चली जायगी, आप जो कुछ अपना खो चुके हैं, वह सब कुछ मिल जायगा, और आपकी उस शोचनीय दशा का पलड़ा एकदम पलट जायगा।

हम लोग गुण नहीं देखते, और गुण सबसे लेना चाहिये, चाहे आर्य्यसमाजी हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, ब्राह्म हो, या कोई और हो, क्योंकि गुणों की कमी सबमें है। क्या कोई आर्य्यसमाजी, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्म या कोई और मजहब-

लड़के वहाँ इल्म सीखने गये थे, पर खर्च तो वे ले ही नहीं गये थे। कॉलेजों में वे किस तरह भरती होते? सो उन्होंने वहाँ मजदूरी करनी शुरू की। किसी ने हल लगाना शुरू किया, किसी ने और मजदूरी अख्त्यार की। वहाँ मजदूरों को छः रुपया तक प्रति दिन मजदूरी के मिलते हैं। अतः वे लड़के मजदूरी करके खूब रुपया पैदा करने लगे। अमेरिका में मजदूरों के पढ़ने के लिये रात के स्कूल (night schools) हैं, क्योंकि जो आदमी गरीब हैं और दिन के स्कूल में नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हीं के उपकार के लिये रात के स्कूल का प्रबन्ध है, ताकि अपने गुजारे के लिये दिन में मजदूरी करें, और रात में पढ़ें। बहादुर जापानी लड़के भी उन्हीं रात के स्कूलों में भरती हुए। सो वे रात को इल्म हासिल करने लगे, और दिन में रुपया कमाने लगे। जब उनके पास कुछ रुपया जमा हो गया, और अँगरेजी भी वे बोलने-समझने लगे, तब कॉलेज में भरती हो गये। जापानी लोग जिस मुल्क में जाते हैं, उस मुल्क की भाषा वे उसी मुल्क में जाकर पढ़ते हैं। सो वे मुख्तलिफ क़िस्म के इल्म पढ़ने लगे। पश्चात् पास होकर अपने देश को आये, और इल्म के साथ-साथ रुपया भी पैदा कर लाये। यह देखो, जापानियों की बुद्धि, स्वदेशानुराग और कष्ट-सहिष्णुता कैसी अनुपम है! स्वदेशानुराग कि अपने देश का धन अपने ही देश में रहे, यहाँ तक कि अपने फायदे के लिये भी यदि दूसरे मुल्क में जाना पड़े, तो भी जहाज, रेल के किराये में भी अपना रुपया परदेश में न जाय, और कॉलेजों की पढ़ाई का खर्च तो अलग रहा, वरन् अपने देश के पैसे से एक किताब तक भी न खरीदी जाय; खाने-पीने में अपना पैसा खर्च करना तो अलग रहा, उसको वहीं से पैदा करके अपने मुल्क को रुपया एकत्र करके लाया जाय; और अपने मुल्क की

भलाई के लिये सबसे बड़ी बात यह की जाय कि दूसरे मुल्कों से वे 'उत्तम विद्या' सीख कर आवें कि जिसको अपने मुल्क में निहायत जरूरत है, और जिस पर अपने देश की उन्नति निर्भर है। बुद्धि से वे लोग कैसे जल्दी उस तरीके को सीख लेते हैं, जिससे उनकी उन्नति हो। किराये से बचने के लिये ही उन्होंने कैसा अनोखा कौशल किया था कि सफर भी हो गया, किराया भी न पड़ा, उलटा कुछ रुपया हाथ आ गया! हमको संदेह है कि दुनिया के किसी और मुल्क के आदमियों की ऐसी बुद्धि हो। भला दुनिया में ऐसा कौन मुल्क है, जिसने पचास वर्ष के अंदर ऐसी आशातीत उन्नति की हो, जैसे जापान ने की है? यही उनकी विचित्र बुद्धि का अनुपम दृष्टांत है। यह उनके असली वेदान्ती होने का सुस्वद, सुधामय, मधुर फल है। ऐसी कष्ट-सहिष्णुता कि अमीरों के लड़के भी खाद्, बगैरा नीच और खेती बगैरा मुश्किल काम करने में न शर्मिन्दा हों, और न तकलीफ समझें, किन्तु दिन में खेती बगैरा की कठिन मेहनत करें और रात में करें गंभीर पढ़ाई, अर्थात शारीरिक मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम करें, और कभी न ! प्यारो ! जापान में ऐसा देशानुराग है, ऐसी विचित्र बुद्धि है, ऐसी कष्ट-सहिष्णुता है, तब जापान जैसी और जितनी उन्नति चाहे, वह वैसी और उतनी ही तरक्की कर सकता है। उधर जब जापान के लोग अपने मुल्क की उन्नति के लिये ऐसे-ऐसे यत्न और विचारों से काम ले रहे हैं, इधर तब हिन्दुस्तान के लोगों को अजब कैफियत है। पहले तो दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तान की नजर में पाप है, तिस पर भी यदि किसी ने हिम्मत की और उसको पाप न भी समझा, तो उसको आला दर्जे का सामान चाहिए। वह

इसके अतिरिक्त वह विलायत से लौटकर जापानवालों की तरह कभी मुल्कवालों को प्यार नहीं करेगा, बल्कि अपने मुल्कवालों को असभ्य, बेवक़ूफ़ और जंगली ख़्याल करेगा और उनके साथ उठने-बैठने व बोलने-चालने में भी शर्म मानेगा; तो कहिये, हिन्दुस्तान की किस तरह तरक़्क़ी हो?

हिन्दुस्तान की तरक़्क़ी के लिये इस बात की ज़रूरत नहीं है कि हिन्दुस्तान के लोग विलायत में जाकर बैरिस्टरी पास करके आवें, किन्तु इस बात की ज़रूरत है कि वे लोग कृषि-विद्या सीख कर आवें, और हो सके, तो और हुनर भी सीख कर आवें, जिससे अपने मुल्क को फ़ायदा हो, अपने मुल्क का पैसा अपने मुल्क ही में रहे, और दूसरे मुल्क का भी रुपया अपने मुल्क में आवे। दूसरे मुल्क का रुपया इस मुल्क में तभी अधिक आवेगा, जब कृषि-विद्या की तरक़्क़ी होगी। और-और हुनरों में हिन्दुस्तान दूसरे मुल्क को बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरे मुल्कवाले उन बातों में बहुत बढ़ गये हैं, कृषि-

से हिन्दुस्तान की आमदनी का सिलसिला बढ़ सकता
, सो हिन्दुस्तान के लिये कृषि-विद्या की ओर विशेष ध्यान
की अत्यंत आवश्यकता है। इस विद्या की तरक़्क़ी के लिये
जाना होगा। वहाँ सब विद्या पढ़ाई जाती हैं।
में कृषि-विद्या की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता,
कि वहाँ और-और हुनरों की अधिकता है, और आबादी बढ़ जाने के सबब से खेती भी कम है। हिन्दुस्तान में कृषिविद्या की पाठशाला पहले तो है ही नहीं, अगर कहीं है भी, तो ठीक नहीं है। यहाँ पढ़ाई का कुछ और ही ढंग है, किताबों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में नहीं लाया जाता। यहाँ पढ़ाना कुछ और, अमल में कुछ और। वहाँ स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अच्छी तरह अमल में भी लाना सिखाया जाता है।

में डरते रहते थे कि कहीं धर्म की हानि न हो। अपने शरीर के साथ वे जैसा बर्ताव करते थे, दूसरे के शरीर के साथ भी उनका वैसा ही बरताव होता था। वे अपने में और दूसरे में भेद नहीं समझते थे। उनकी नज़र में संसार के सभी प्राणी बराबर थे। सबको ही धर्मात्मा होना, सबको ही धर्मोपदेश देना, वे चाहते थे। सब की ही भलाई करना उनका नित्य कर्म था। पर अब ज़माना (समय) पलट गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब केवल किताबों में रह गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ विवाद में काम आता है, हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ बातूनी जमा-खर्च का रह गया।

हिन्दुस्तानी अब न धर्म-वीर रहे, न धर्म-भीरु, क्योंकि धर्म के लिये अपने शरीर की परवा न करना तो एक तरफ़ रहा, जो कोई उनके घर में आकर उनके धर्म की निन्दा करने लगे, तो भी वे कान नहीं हिलाते हैं; और यदि आप स्वयं बड़े-बड़े अनर्थ भी कर बैठें, तो उन्हें डर नहीं होता कि हम कैसे धर्म-हीन हो रहे हैं, हम धर्म पर कैसे लात मार रहे हैं? प्यारे हिन्दुस्तानियों! हिन्दुस्तानी अपने बेनज़ीर शास्त्रों की ओर ध्यान नहीं देते, विचार नहीं करते, मनन नहीं करते। ओह! आपको मालूम नहीं है कि आपके पूर्वजों ने आपके लिए कैसे अक्षय खज़ाने का संग्रह रख छोड़ा है। ऐसे खज़ाने के पास होने पर भी प्यारो! भूखे मत मरो, ठोकरें मत खाओ, इधर-उधर मत भटको। इस खज़ाने का उचित व्यवहार करो, उचित रीति से खर्च करो, देखो और विचारो कि इस दौलत पर सारी दुनिया का हक़ है। आप केवल इस बात के एजेन्ट बनो कि इस खज़ाने की दौलत सारी दुनिया को सूचित कर दो कि हमारे पास हम तुम सबके लिये खज़ाना

धर्म (ख़ज़ाने) को इस क़दर छिपा रक्खा है कि आप भी उसको नहीं देखना चाहते कि उसमें कैसे-कैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जिससे आपको अपनी असलियत मालूम होती और आपको अभिमान होता कि हमारा ख़ज़ाना दुनिया के और ख़ज़ानों से बढ़िया है। पर ऐसा न करके आप दूसरों के काँच पर लुभाये चले जाते हो। और अगर आपकी यही हरकत रही, तो आप सब के सब काँच पर लुभाये चले जाओगे, और आपका नामोनिशान दुनिया में नहीं रहेगा। यह भी याद रक्खो कि यह अमूल्य ख़ज़ाना अब छिपाने से भी छिपता नहीं है। लोगों को उसका पता लग चुका है और अमूल्य जवाहिरात को वे लोग निकालने लग गये हैं। आपके ख़ज़ाने के अमूल्य रत्नों में से सत्य, शौच, संयम, विद्या, बुद्धि, धृति, क्षमा नाम के रत्न और सभी रत्नों से बढ़ा हुआ समदर्शिता रूप महारत्न, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मविद्या या वेदान्त है और जिसका यहाँ नाम नहीं दिखाई देता है, वे सब के सब रत्न अमेरिका, जापान आदि दूसरे मुल्कों में चले गये हैं, ऐसा ही मालूम होता है। देखो अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में जो अद्भुत प्रकाश का सौन्दर्य दिखलाई देता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन्हीं महारत्नों की विमला ज्योति वा छटा का प्राकृतिक गुण है, उन्हीं का प्रभाव है और उन्हीं का महत्त्व है। जापान अमेरिका को देखकर [illegible] ज़माने का स्मरण होता है। उस ज़माने में हिन्दुस्तान में जिस दर्ज का धर्म था उन मुल्कों में इस समय उस दर्ज का धर्म पाया जाता है। तब हिन्दुस्तान की उस ज़माने में जो हालत थी वह हालत जापान अमेरिका की इस वक्त हो तो आश्चर्य ही क्या है।

एक बार अमेरिका में राम को एक [illegible]

न्योता आया, जो विपुल धन की अधिकारिणी थी, जिसने ४५ लाख रुपया अपने मुल्क की उन्नति के लिये ही दान दिये थे। जब राम वहाँ गया, तो वह धनी स्त्री जूता झाड़ने के लिये तैयार थी। राम ने आश्चर्य से पूछा कि आप इतने नौकरों के मौजूद होने पर भी ऐसा काम स्वयं क्यों करना चाहती हो? उसने उत्तर दिया कि इस काम के करने में लज्जा ही क्या है, यह शारीरिक काम करने में हम अपनी इज्जत समझते हैं, और उसने अपने ही हाथों से यह काम किया। क्या कोई हिन्दुस्तानी रईस या मामूली आदमी भी ऐसा काम कर सकता था? कभी नहीं। हिन्दुस्तानी आदमी अगर यह सम्भव हो, तो अपनी आँखों से भी देखा नहीं चाहता है। पर कृष्ण के जमाने में ऐसा अतिथि-सत्कार बड़े आदमी स्वयं करते थे। कृष्ण तथा कृष्ण की पटरानियों ने स्वयं ऐसा अतिथि-सत्कार सुदामा आदि ब्राह्मणों और अतिथियों का किया। युधिष्ठिर के यज्ञ में अर्जुन और कृष्ण ने जूठी पत्तल उठाने और पैर धोने का काम अपने जिम्मे लिया था, पर अब अमेरिका में ये बातें पाई जाती हैं, हिन्दुस्तान में नहीं।

कृष्ण के ही जमाने में हिन्दुस्तान में ब्रह्मचर्य्य की जो अवस्था थी, वह अमेरिका में अब पाई जाती है। वहाँ २० वर्ष तक न कोई विवाह करता है और न किसी को विवाह का ख्याल ही होता है, यहाँ तक कि २० वर्ष तक के लड़के और लड़कियाँ एक ही पाठशाला में पढ़ते हैं, और भाई-बहिन की सी प्रीति रखते हैं। उनके विषय में चाहे कोई कुछ कहे, पर इस बात का हमको दृढ़ विश्वास है कि उनके दिलों में कभी नापाक (अपवित्र) ख्याल पैदा नहीं होता। यह कैसे ताजब का ब्रह्मचर्य्य है? वे स्त्री और पुरुष को बराबर की शिक्षा देते हैं, उनकी पढ़ाई में वे कुछ भेद नहीं रखते हैं। मर्दों

पंडिता श्री कि उसने सभा में जो प्रश्न किये थे, उनका उत्तर देना भीष्मपितामह के लिए भी कठिन हो गया था। जब हिन्दुस्तान में स्त्री-शिक्षा बंद कर दी गई, जिसका फल भी खूब मिल रहा है। अमेरिका आदि मुल्कों में स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार है। एक समय राम अमेरिका के जंगलों में रहता था, एक अमेरिकन लड़की अपने पिता के साथ उपदेश सुनने आई। उपदेश पूरा होने के पश्चात् उस लड़की ने जो कुछ सुना था, वह कविता में लिख डाला। इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि स्त्री और पुरुषों की शिक्षा में पहिले भेद न था, और इसीलिए उनकी दिमाग़ी ताक़त में फ़र्क भी न होता था। तब हम कोई कारण नहीं समझते कि स्त्रियों की शिक्षा क्यों बन्द हुई, और उनकी ताक़त क्यों रोक दी गई है। मुल्क की उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है, अर्थात् बिना स्त्री-शिक्षा के मुल्कों की उन्नति हो ही नहीं सकती। लड़कपन में बालकों को जो उपदेश दिया जाता है, उसका असर बहुत जल्द होता है, और कभी खाली नहीं जाता है, और बालकों को माता ही के साथ रहने का अवसर मिलता है। सो लड़कपन में बालकों को शिक्षित माता की आवश्यकता होती है। पर यदि स्त्री पढ़ाई ही जायगी, तो शिक्षित माताएँ कहाँ से होंगी; और जब माताएँ ही नहीं, तो बालकों को सदुपदेश ही कहाँ से सकती हैं। और जब बालक बाल्यावस्था ही में सदुपदेश द्वारा सुयोग्य न बना दिये गये, तो मुल्क की कैसे उन्नति हो सकती है। अतः प्यारो! स्त्री-शिक्षा को फैलाओ, आपके पूर्वपुरुष स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे, आप क्यों विपक्षी बन कर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारते हो? लड़कों को बाल्यावस्था में यह जरूरी है कि उनके नस-नाड़ी में देशोन्नति का ख्याल

नय करेगा कि क्या हुक्म है। जब वह कहेगा कि मुझे
ों चीज़ दरकार है, या मैं अमुक वस्तु केवल देखना
हता हूँ, तो वह दरबान उनको उस कमरे में, जहाँ उसके
यक सौदा है, या जहाँ-जहाँ वह देखना चाहता है, ले जायगा
दान फाटक से कुछ दूर तक उसको पहुँचा कर अदब से
लाम करके वापस होगा। यह बराबरी का सलूक, यह
ाई, यह प्रेम ही व्यापार की उन्नति के मुख्य अंश हैं।
इनका पूर्ण व्यवहार करते हैं, और इसीलिये ही वे व्यापार
इतना बढ़-चढ़े हैं कि उनकी बराबरी करनी मुश्किल
न पड़ती है। यहाँ हिन्दुस्तानियों की अजब कैफ़ियत
। यहाँ ग्राहकों के साथ एकसाँ बरताव नहीं होता।
ी दुकानों से थोड़ा सौदा खरीदने का किसी को हौसला
ीं होता। इसका कारण यह है कि बड़ी दुकानवाले थोड़ा
दा खरीदनेवाले के साथ अच्छा बरताव नहीं करते। छोटी-
टी दुकानवाले अक्सर झूठ बोला करते ह। इन लोगों
यह खयाल है कि बिना झूठ के व्यापार चल ही नहीं
कता। एक पैसे का सौदा खरीदने में घंटों मग़ज़
रना पड़ता है। मुफ्त में तकरार बढ़ती और समय नष्ट
ता है। यदि सचाई के साथ व्यवहार किया जाय, तो
ों न व्यापार में तरक़्क़ी हो?

हिन्दुस्तान में व्यापार की तरक़्क़ी क्यों नहीं होती? इसका
क कारण यह है कि हिन्दुस्तानी लोग, जो लिख-पढ़
ते हैं, केवल नौकरी किया करते हैं, व्यापार करना
अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं, या उधर ध्यान ही नहीं देते।
ई दुकानदारों की ही वे नौकरी करें, पर दुकानदारी
ी नहीं करेंगे। यह क्या ही मज़े की बात है कि जिस पेशे
स्वयं नहीं करना चाहते, उस पेशेवाले की नौकरी तो

अपने तौर पर लिखा और अपने प्रिंसिपल को दिखाया। प्रिंसिपल बड़ा खुश हुआ, और उसने उस लड़की को छः मास का प्रमोशन दिया। इसी प्रकार जब तक कि हिन्दुस्तान में भी लड़कों की लियाक़त तथा विचार-शक्ति पर ध्यान नहीं दिया जायगा, तब तक हिन्दुस्तानियों का आला दर्जा पास कर लेना भी किसी काम का नहीं। यहाँ भी किंडर-गार्टन होने चाहियें, जिसमें बच्चे प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) इल्म हासिल करें, उनकी विचार-शक्ति बढ़े, अर्थात् युवा होने पर वे किसी काम के हों, और अपने मुल्क को फ़ायदा पहुँचा सकें। समय चला जा रहा है। एक-एक लम्हा (पल) बहुमूल्य गुजर रहा है। बहुत कुछ सो चुके, बहुत कुछ आराम ले चुके, बहुत कुछ समय नष्ट कर चुके, बहुत कुछ खो चुके। प्यारो! अब अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दो। वह उपाय करो, जिससे आपका मनुष्य-जन्म सार्थक हो। असभ्यता का जामा उतार दो। थोड़ी देर के लिये इस बात पर विचार करो कि आप क्या थे और अब क्या हो गये। अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न देने से अब आप धीरे-धीरे रोटियों के भी मुहताज होते चले जा रहे हो। यदि इसी प्रकार कुछ दिनों तक ऐसी ग़फ़लत की नींद में सोते हुए रहोगे, तो प्यारो! आपकी जैसी दशा होगी, वह आप स्वयं विचार लो। कहने से दुःख होता है। सावधान! सावधान!! बहुत जल्द सावधान होना चाहिये।

अपनी उन्नति करने के लिये हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्क-वालों (विदेशियों) से बहुत कुछ सीखना है। सबसे पहली बात, जो उनसे सीखनी है, यह है कि वे लोग बच्चों को किस प्रकार शिक्षा देते हैं। क्योंकि बच्चों की शिक्षा पर ही देश की उन्नति, अवनति का दारोमदार है। बच्चों को [illegible] प्रकार की शिक्षा दी जायगी, उसी प्रकार का उनका [illegible]

स्वभाव और ख्याल होगा। जापान में जब लड़का पहले-पहल स्कूल में भरती होता है, तो मास्टर उससे सवाल करता है "तुम्हारा शरीर काहे से जीवित है?" लड़का कहता है "अन्न से।" मास्टर पूछता है "कहाँ के अन्न से?" लड़का जवाब देता है "जापान के अन्न से।" मास्टर फिर कहता है, "तब यदि जापान में अन्न न होगा, तो तुम्हारा शरीर जीवित (जिन्दा) नहीं रह सकता?" लड़का जवाब देता है "नहीं, नहीं रह सकता।" तब मास्टर कहता है "जब तुम्हारा शरीर जापानी अन्न से बना है, तो क्या जापान को इख्तियार है कि जब उसको जरूरत हो, तब वह तुम्हारा शरीर ले ले?" लड़का बहादुरी से जवाब देता है "हाँ, जापान को इख्तियार है, जब चाहे हमारे शरीर को ले सकता है।" इस प्रकार अपने देश के लिये हर वक़्त प्राण देने को तय्यार रहने की जापानी बालकों को पहिले ही शिक्षा दी जाती है। यह उसी शिक्षा का फल है कि जापान ने रूस जैसे प्रबल राज्य को ऐसी भारी हार दी है। हिन्दुस्तानियों को भी अपने बालकों को पहिले ही से ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका देशानुराग, उनकी देश-भक्ति, ऐसी प्रबल हो जाय कि समय पड़ने पर वे अपने देश के लिये प्राण देने को तय्यार रहें। शिक्षा का यही पहिला और पहले-पहल बालकों को देना चाहिये।

पहिले अपने देशवालों के साथ प्रेम तथा शान्ति-पूर्वक बरताव करना, यह उनकी दूसरी शिक्षा होनी चाहिये। स्कूलों ही में ऐसी शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि स्कूलों में लड़के आपस में नहीं लड़ना सीखेंगे और प्रेम से रहेंगे, तो जवान होने पर वे एकाएक अपने देशवालों से नहीं लड़ेंगे, और प्रेम-पूर्वक बरताव करेंगे। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। अमेरिका में एक बार एक स्कूल के लड़कों में आपस में

लड़ाई हुई। बहुत कुछ मार-पीट हुई। उसी वक्त प्रिंसिपल को खबर दी गई। प्रिंसिपल आये। उन्होंने न किसी लड़के का बयान लिया और न किसी को धमकाया। उन्होंने आते ही बाजे बजवाने शुरू किये, शांति के गीत गवाये। पश्चात् लड़कों को बुलाया, और झगड़े का कारण पूछा और यह भी दर्याफ्त किया कि किसकी शरारत से यह झगड़ा पैदा हुआ। लेकिन आश्चर्य (तअज्जुब) है, जिन लड़कों में थोड़ी देर पहिले लट्ठ चले थे, उनकी जबान से अब किसी की भी शिकायत नहीं निकली। इसका कारण क्या था? प्यारो! इसका कारण वह बाजा और शान्ति के गीत थे। उनको जो पहिले क्रोध हुआ था, वह बाजा और गीत सुनकर शान्त हो गया। यदि प्रिंसिपल आते ही उनके बयान लेने शुरू करते, तो इस लड़ाई का नतीजा शांति में खतम न होता। एक लड़का दूसरे को क़सूरवार ठहराता, और अवश्य ही कुछ लड़के क़सूरवार निकलते। और, संभव था कि इसका नतीजा यह होता कि कुछ लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, और जो लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, वे उन लड़कों के हमेशा जानी दुश्मन (घोर शत्रु) हो जाते, उनके विरुद्ध गवाही देते। ख्याल करने से इसका नतीजा बहुत बुरा पैदा हो सकता है। यहाँ तक कि देश में अशांति फैल सकती है।

तीसरी बात लड़कों को डराना-धमकाना नहीं चाहिए, लड़कों को डराना और धमकाना बड़ी बुरी बात है। इससे लड़के डरपोक और कमजोर हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में डराना-धमकाना बुरे लड़कों को नेक बनाने की चेष्टा है, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है। लड़कों को नेक बनाने के लिये सबसे उम्दा मार्ग यह है कि उनकी नजरों से कोई बुरी बात नहीं गुजरने देनी चाहिये। और वीर क्या

अब यह विचार करने की बात है कि जिस विषय की ओर बालक की रुचि ही नहीं, उस विषय में वह क्योंकर तरक़्क़ी कर सकता है। सुतरां बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। बालकों पर ही देश की भावी भलाई का भरोसा है।

एक बात जो केवल हिन्दुस्तानियों में दूसरे देशों से बढ़ कर अभी तक पाई जाती है, वह योग-विद्या है। पर अब अमेरिका आदि देश इसमें ख़ूब उन्नति कर रहे हैं, और हिन्दुस्तानी भूल रहे हैं। अमेरिका में एफ़० ऐमरसन साहब ने, जो जंगलों में रहता था, योग-विद्या में इतनी उन्नति की है कि आश्चर्य्य होता है। वह मोहन को बदल कर गोपाल कर सकता है, स्थल को जल; ये सब करामातें वह योग-विद्या से करता है, जादू से नहीं। और अब आशा है कि वे लोग योग-विद्या में भी हिन्दुस्तानियों से बढ़ जायँगे। सो प्यारे हिन्दुस्तानियों! आपको सँभलना चाहिये। पहलेपहल विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद को यहाँ से अरब, मिस्र, रूम, यूनान होता हुआ इँगलैंड पहुँचा था। वहाँ से अमेरिका होता हुआ जापान पहुँच गया। अब जापान से उसकी किरणें इधर झुकती हुई दिखलाई देती हैं। अब आप सचेत हो जाओ। ऐसा न हो, यह सूर्य पश्चिम को ढलक जाय और आप सोये के सोये ही रह जायँ। उठो, और उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्त्तव्यों पर लगो, और अपने देश-वासियों को कर्त्तव्य बतलाओ। सूर्योदय के पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्त्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे, तो सूर्य पश्चिम को चला जायगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा।

ॐ ॐ ॐ

परमेश्वर है, वह स्वरूप तो त्रिलोकी को आनंद देनेवाला है, सूर्य को सोना और चंद्रमा को चाँदी देनेवाला है, अतः आप ठीक उस बालक की तरह अपने कर्मों पर लज्जित हूजिए, और सांसारिक वस्तुओं में अपने को इतना आसक्त न होने दीजिए। अपने स्वरूप को जानिए और समझिए। देखो, आपको गायत्री मंत्र क्या सिखाता है। राम उस मंत्र को नहीं पढ़ता, केवल उस का आशय (उद्देश्य) बतलाएगा। वह यह है, मेरी बुद्धि प्रकाशित हो, क्योंकि वह जो सूर्य, चंद्र और तारों को प्रकाश देनेवाला है, वह मेरा आत्मा है। जब यह बात है, तो राम कहता है कि वे लोग जो अभेदवादी हैं, वे अपनी अभेद-दृष्टि को सम्मुख रखकर, और वे जो भेदवादी हैं, वे अपनी भेद-दृष्टि को धारण करके उस ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करें। वह ध्यान क्या है? वह यह है कि वह जो बाह्य प्रकाश का स्रोत है और जो भीतरी ज्ञान-ज्योति का स्रोत है, वह मेरे हृदय में है, मेरे हृदय में वह दीपक जल रहा है, मेरे हृदय में वह ज्योति प्रकाशमान है।

अब राम आज के विषय पर आता है। वह विषय यह है।

उन्नति का मार्ग

यह विषय अत्यंत विस्तृत है। इसलिये इसमें से केवल एकआध आवश्यक भागों को राम लेगा। आम तौर से लोग यह प्रश्न करते हैं कि ये उन्नति-उन्नति पुकारनेवाले लोग कहाँ से आ गये? अरे भाई! अपने घर रहने और आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत करने में सुख है, या उन्नति-उन्नति की सिर-पीड़ा मोल लेने में? लोगों की जिह्वा पर यही है कि इनको यहीं रहने दो, हम आगे नहीं जाना चाहते। इसी पर वे आक्षेप भी करते हैं, और उनका कथन है।

काम है कि गाड़ी को खींचकर आगे ले जाय। यदि वह न चले और रुक जाय, तो कोचवान उस पर चाबुक-पर-चाबुक मारता है। यही दशा व्यक्तियों और जातियों की है।

जो व्यक्ति या जाति आगे चलने से इनकार करती है, उसको दैव या प्रकृति (Providence) के नियम चाबुक मारते हैं। यह नियम अटल है। इसके बरतने में कभी रिआयत नहीं हो सकती। परमेश्वर को किसी जाति या संप्रदाय का पक्ष नहीं है। जो कोई उसके नियम के अनुसार चलता है, वह उसका प्यारा है, वह बचता है; किंतु जो उसके नियम को तोड़ता है, वह उसका शत्रु है, वह मरता है और नष्ट होता है। ज़रा देखो तो, यदि तुम सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलो, तो तत्काल दंड पा जाते हो, किसी तरह बच नहीं सकते। जब सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलने का यह हाल है, तो भला परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध चलना और बचने की आशा करना बिलकुल मूर्खता है या नहीं। धर्मशास्त्र के अनुसार भी आगे बढ़ने से इनकार करने का ही नाम पाप है। इसको तमोगुण कहते हैं। भौतिक विज्ञान-शास्त्र इसको सिखाता है कि गति के नियमों में से एक नियम का नाम है जड़ता का नियम (Law of Inertia)। अपनी दशा बदलने से इनकार करने को जड़ता कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में यह भाव या स्वभाव है कि वह अपनी दशा बदलना नहीं चाहती। यही सुस्ती, शिथिलता या जड़ता है। हमारे शास्त्रों में श्रम या शक्ति से शून्य होने को तमोगुण कहते हैं। यह नियम विस्तार के साथ इन शब्दों में वर्णन किया जा सकता है कि यदि एक वस्तु को स्थिर अवस्था में रक्खा जाय, तो सदैव उसी अवस्था में रहेगी और जब तक कोई

इसी प्रकार जो बातें पशुओं में मौजूद थीं और उनमें पाप न थीं, परन्तु मनुष्य की अवस्था में आने से पाप में परिवर्तित हो गईं। पशुओं की दशा छोड़ने के पश्चात् मनुष्य मनुष्य की दशा में आता है, किन्तु उसमें तमोगुण (Animal passion) शेष रहता है। यदि इस समय वह उस बुद्धि से, जो उसको पशुओं से पहचान करने के लिये दी गई है, काम न ले और इस बात पर विचार न करे कि क्या उसके लिये पुण्य है और क्या उसके लिये पाप है, तो वह जड़ता के नियम (Law of Inertia) के अनुसार जड़ है, क्योंकि वह अपनी अवस्था परिवर्तन करना नहीं चाहता है। वह उन बातों को, जो उसमें पशुता की अभी शेष हैं, ज्यों की त्यों रहने देना चाहता है, और बुद्धि के प्रकाश से लाभान्वित होकर आगे नहीं बढ़ना चाहता है।

अतः जो व्यक्ति आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं है, वह पाप करता है। यही पाप का तत्त्व है, और यही है सम्बन्ध कि जिस के कारण पाप मनुष्य में आता है।

आपकी बाइसिकिल का पहिया घूम रहा है, और आपका कुत्ता उसके आगे-आगे दौड़ता चला जा रहा है। यदि वह बराबर चला जायगा, तो उसको कोई सदमा (चोट) आपकी बाइसिकिल के पहिए से नहीं पहुँचेगा, किन्तु यदि वह रुक जाय या आपकी बाइसिकिल की चाल की अपेक्षा अपनी चाल कम कर दे, तो वह अवश्य पहिए के नीचे दब जायगा। हाँ, एक उपाय उसके बचाने का यह भी है कि आप स्वयं अपनी बाइसिकिल को रोक दें। इसी तरह पर काल का पहिया बराबर चला रहा है। उसके साथ-साथ दौड़ो तो कुचल है, नहीं तो उसके नीचे दबकर मरना आवश्यक है। यहाँ एक कठिनता और भी है कि परमेश्वर अपने पहिए को नहीं

रोकेगा। उसके नियम अटल हैं, वे सदैव प्रचलित हैं। वहाँ किसी का पक्षपात नहीं है।

अतः उन्नति करो, नहीं तो कुचले जाओगे, पिस जाओगे और नष्ट हो जाओगे। वे ही जातियाँ नष्ट होती हैं, जो आगे नहीं चलती हैं, या जो सदैव पीछे ही को पग हटाती हैं, जो नवता (originality) और नूतन मार्ग प्रवर्तन (innovation) को पाप समझती हैं। राम इन शब्दों की व्याख्या नहीं करेगा। इनका तात्पर्य तो आप अपने आप समझ गये होंगे। इससे यह परिणाम निकला कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न और पुरुषार्थ के हैं।

इस पर यह प्रश्न होता है कि यह तो सत्य है कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न के हैं; किन्तु प्रयत्न से क्या होता है, प्रत्येक वस्तु प्रारब्ध के अधीन है, अर्थात् भाग्य पर निर्भर है। यह विषय स्वयं ऐसा है कि इस पर एक स्वतंत्र व्याख्यान दिया जाय, किंतु संक्षेपतः उत्तर यह है:—

तत्त्व तो यह है कि जो लोग कहते हैं कि प्रत्येक काम भाग्य से होता है, वे भी सच कहते हैं। वे इस सिद्धान्त को लागू करने में भूल करते हैं। दृष्टान्त रूप से, जैसी ऋतु होगी, वैसा स्वभाव हो जायगा। जाड़े की ऋतु में गरम कपड़े पहनोगे, घर के भीतर रहोगे, आग जलाओगे, आदि-आदि। गरमी की ऋतु में मैदान में रहोगे, ठण्डे कपड़े पहनोगे, ठण्डा पानी पियोगे, आदि-आदि।

अब ऋतु का बदलना दैव-इच्छा वा भाग्य या प्रारब्ध है, अर्थात् वह एक नियत नियम है। और यह प्रारब्ध सारे देश पर प्रभुत्व स्थापन किये हुए है, किंतु ऋतु के अनुसार कपड़े पहनना और उसके अनुसार स्वभावों को बनाना अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर है। परिवर्तित ऋतु की ८

होती है। सारे बुद्धिमान् लोगों के काम पुरुषार्थ ही से होते हैं। प्रारब्ध का शब्द तो केवल उन लोगों के आँसू पोंछने के वास्ते बनाया गया था, जो कोमल-चित्त हैं, और जिन पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, नहीं तो नित्यप्रति जीवन के कुल काम पुरुषार्थ ही से हो सकते हैं। मनुष्य भोजन भी पुरुषार्थ ही से खाता है, पानी भी पुरुषार्थ ही से पीता है, नौकरी भी पुरुषार्थ ही से करता है, कोई सार्वजनिक काम भी पुरुषार्थ ही से करता है।

इस भूमिका के पश्चात् ज़रूरी उन्नति को, सफलता के साथ करने के उपाय को राम बताता है। उद्योगों में कृतकार्यता प्राप्त करने के लिये इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) सांसारिक काम-धंधों के निमित्त सबसे पहली वस्तु प्रकाश है। कैसा ही निर्मल और स्वच्छ घर क्यों न हो, यदि अँधेरे में जाओगे, तो कहीं कुरसी की चोट लगेगी, कहीं दीवार से सिर टकरायगा, कहीं लैम्प से ठोकर लगेगी, और वह टूट जायगा; निदान, पग-पग पर दुःख ही दुःख होगा। फिर बिना प्रकाश के कोई वस्तु उग नहीं सकती। एक पौदा अँधेरे में बोया जाय और दूसरा प्रकाश में, और दोनों का सींचना एक ही प्रकार किया जाय। परिणाम क्या होगा? स्पष्ट है कि अँधेरे में बोया हुआ पौदा सूख जायगा और प्रकाशवाला खूब हरा-भरा होता चला जायगा। फिर जब बिना प्रकाश के वृक्ष नहीं उन्नति कर सकते हैं, तो मनुष्य का उन्नति करना तो एक किनारे ही रहा। अब प्रकाश से प्रयोजन क्या है? वही ध्यान, जिसका उल्लेख राम भाषण के आरंभ में कर आया है। वही तेजों का तेज, ज्योतिः स्वरूप आत्मदेव, उसका न भूलना इसी का नाम प्रकाश है। अब इस पर कदाचि-

ही आपकी सफलतायें भी होंगी । यह प्रसिद्ध उक्ति है—

"घर से जाओ खा के, बाहर मिलें पका के,
घर से जाओ भूखे, बाहर मिलें धक्के।"

यदि आप धन या सन्तान की कामना से परमेश्वर की भक्ति करते हैं, तो वह परमेश्वर की भक्ति नहीं है, वरन् वह तो अपनी स्वार्थपरता की भक्ति है। आप वास्तव में परमेश्वर की भक्ति नहीं करते, वरन् उनको अपना खानसामा बनाते हैं कि वह हर समय आपकी सेवा को उपस्थित रहे, और जब जिस वस्तु की आपको आवश्यकता हो, उसको वह तत्काल आपके सम्मुख लाता रहे ।

अहा! यह तो उलटी गंगा बहाना है। प्यारे! परमेश्वर को अपनी विषय-कामनाओं के लिये मत नचाओ। आपको चाहिए कि प्रत्येक काम को हिम्मत और शांति के साथ करो । यही सफलता का साधन है । अगर आपके पास कोई व्यक्ति भीख माँगने आए, तो आप उससे आँख चुराते हो, इसी तरह जब आप परमेश्वर के पास भिखारी बनकर जाओगे, तो वह भी आपसे आँख चुराएगा। परमेश्वर से हृदय की शुद्धता और भक्ति के साथ मिलो। यदि आपके यहाँ कोई बड़ा आदमी आवे, तो आप उसको बड़े आदर से बिठा लेते हैं, किंतु एक मक्खी और दस मनुष्य आपके पास आकर बैठना चाहें, तो आप उससे घृणा करते हैं। याद रक्खो कि यह आत्मा कमजोर से नहीं मिलना चाहता। दुर्बल की परमेश्वर के घर में दाल नहीं गलती।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

यथा—हर दीदा जलवागाहे-आँ मह पारा नेस्त।

अर्थ—प्रत्येक चक्षु में उस (प्रिय स्वरूप परमात्मा) का प्रकाश समान रूप से आता नहीं होता है।

बाह्य शरीर है, स्वच्छ और निर्मल है। इस कारण इसके भीतर का प्रकाश बिना रोक बाहर चला आता है। अब स्वच्छ होने से क्या प्रयोजन है। उसका प्रयोजन यह है कि इसने अपने मन की कालिमा और द्वेष-भाव को निकाल दिया है। इसी प्रकार यदि आप भी अपने मन की कालिमा और अहंकार के भाव को निकाल दें, तो आपके भीतर का प्रकाश भी अपने आप बाहर निकल आएगा। यथा—

कब लिबासे-दुनयवी में छिपते हैं रौशन ज़मीर ;
जामए-फ़ानूस में भी शोला उरयाँ ही रहा।
कब सुबुकदोश रहे क़ैदिये - ज़िंदाने - वतन ;
बूए-गुल फाँदती है बाग़ की दीवारों को।

कदाचित् यह कहा जाय कि हम अपने धार्मिक सिद्धांतों की पाबन्दी करते हैं, और धार्मिक सिद्धान्त चाहते हैं कि झगड़ा किया जाय। इसका उत्तर यह है कि धार्मिक सिद्धान्तों का उद्देश कदापि लड़ाई-झगड़ा करना नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म का पहला सिद्धांत यह है कि ईश्वर को जानो और मानो। क्या इस पर आप आचरण करते हैं? कदापि नहीं। यदि आप इस पर चलते होते, तो क्या आप परमेश्वर की इतनी भी परवाह और इज्ज़त न करते कि जितनी आप अपने जिले कलेक्टर की करते हैं। यदि इस समय इस जलसे (समारोह) कलेक्टर साहब आ जायँ, तो सबकी साँस बन्द हो जायगी। प्रत्येक समय इस बात का ध्यान करेंगे कि कोई भद्दा वाक्य मुख से न निकल जाय, अथवा कोई निर्लज्ज चेष्टा न हो जाय। आप कभी कलेक्टर साहब के सामने चोरी न करेंगे, कभी उनके सामने किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखेंगे, और न उनके सामने कोई खराब वार्ता करेंगे।

यकीं तरावत रा अज़ कुजास्त ता यकुजा !

हो अथवा न दिया हो, कुछ परवाह नहीं है। राम आपसे यह कहता है कि सफलता के लिये पवित्रता और ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भारतवासी बने रहना चाहते हैं, तो वीर्य को सुरक्षित रक्खें, अन्यथा कुचले जायँगे। यह दीपक आपके सामने जल रहा है, यह क्यों जलता है? इसके बीच के भाग में तेल भरा हुआ है। वह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता है, और ऊपर आकर प्रकाश-रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि इसके तेलवाले भाग में कोई छिद्र हो जाय, तो उसका तेल धीरे-धीरे बह जायगा, और फिर इससे प्रकाश न निकल सकेगा। यही दशा आपकी है। यदि आपके भीतर का वीर्य नीचे न गिरेगा, तो यह ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में जाकर आत्मिक ज्योति बन जायगा। किन्तु यदि आप इसके विरुद्ध करेंगे, अर्थात् अपने वीर्य को गिरायेंगे, तो आपकी वही दीपक की सी दशा होगी। जिन लोगों के शरीर से कोई अपवित्र कर्म नहीं होता, या जिनके मन में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होता, उनका वीर्य ऊपर चढ़कर बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही अवस्था को इँगलैंड के प्रसिद्ध कवि ने यों वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure. (Tennyson)

मेरी शक्ति है दसगुणी किसलिये
कि मेरा हृदय शुद्ध है, इसलिये।
दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत;
क्योंकि मुझमें है इफ़्फ़तो-अ़स्मत।

हनुमान् सबसे बड़ा वीर किसलिये था? क्योंकि वह यती था। कहते हैं कि मेघनाद बड़ा योद्धा था। उसको वही व्यक्ति

मार सकता था, जिसके हृदय में १२ वर्ष तक कोई अपवित्र विचार न आया हो। यह कौन व्यक्ति था? यह श्री लक्ष्मण जी थे। भीष्म का नाम भीष्म इसी कारण से पड़ा कि वह जितेंद्रिय थे। सर आइज़क न्यूटन जैसा प्रसिद्ध तत्त्वान्वेषक, जिसके ऊपर आज इँगलैंड को इतना अभिमान है, सत्तासी वर्ष तक जीवित रहा। मरते समय तक उसके होश-हवास बहुत ही ठीक थे, क्योंकि वह जितेंद्रिय था, और अत्यंत पवित्र था। जिस तत्त्ववेत्ता ने संसार के तत्त्वज्ञान को पल्टा दिया, वह कौन था? वह कैंट (Kant) था। यह बड़ा भारी यती था। इसके मन में कभी अपवित्र विचार तक नहीं आया। अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो (Henry David Thoreau) और जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) दोनों बड़े जितेन्द्रिय थे। इस समय अमेरिका, इँगलैंड, जापान आदि देश उन्नति कर रहे हैं, इसका क्या कारण है? कारण यह है कि इनके यहाँ के गृहस्थ भी आपके यहाँ के जितेंद्रियों से अच्छे हैं। प्रथम तो उनके विवाह बीस वर्ष के पश्चात् होते हैं, फिर उनकी स्त्रियाँ वैसी शिक्षिता होती हैं कि जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं, तो उत्तमोत्तम विषयों पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे के सत्संग से लाभ

वीर्य (Sex energy) को सुरक्षित रक्खे हुए हैं, तो आप बहुत शीघ्र कृतकार्य होंगे। राम जब प्रोफ़ेसर था, उसका निजी अनुभव क्या था ? और जिस समय राम सफल या असफल विद्यार्थियों की सूची बनाता था और उनसे पूछा करता था कि परीक्षा से कुछ दिन पहले उनकी क्या अवस्था थी ? तो राम ने इससे भी परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा से पहले उत्तम और पवित्र विचार रखते थे, वे कृतकार्य होते थे, और जो अपवित्र विचार रखते थे और सदैव भयभीत रहते थे कि कहीं असफल न हों, वे अनुत्तीर्ण ही रहते थे। अतः सिद्ध है कि जैसे जिसके विचार हृदय के भीतर होते हैं, वैसा ही उसको परिणाम प्रकट होता है। इस बात का प्रमाण इतिहास से भली भाँति मिल सकता है। प्रसिद्ध योद्धा पृथ्वीराज, जो कई एक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, अंत में भोग-विलास में डूब गया, और आपको आश्चर्य होगा कि अंतिम बार जब वह युद्धक्षेत्र को गया, तो उसकी कमर उसकी रानी ने कसी थी। परिणाम क्या हुआ ? युद्धक्षेत्र से मुँह काला करके असफल लौट आया। नैपोलियन, जिसके साहस और वीरता की धाक सारे संसार में जम गई थी, जब वाटरलू के समरांगण को जाने लगा, तो उसके पहले शाम को वह अपने आपको एक अपवित्र चाह में गिरा चुका था। परिणाम स्पष्ट है कि बड़ी विकट हार हुई। अभिमन्यु, कुरुक्षेत्र के युद्ध का प्रसिद्ध योद्धा, जिस दिन मारा गया, उससे पहले सायंकाल को वह अपनी नवीन प्रिय पत्नी के पास गया था, और वहाँ वीर्य गिरा कर आया था। स्मरण रक्खो, अपवित्र वस्तु में कुछ आनंद नहीं है। जिस प्रकार गुलाब का फूल कैसा सुगंधित होता है, किंतु उसमें शहद की मक्खी भी रहती है। जब आपने

किंतु बुरे मनोरथ माँगनेवाले बुरे होंगे। जैसा खयाल करोगे, वैसे ही हो जाओगे।

गर दरे-दिल तो गुल गुज़रद गुल बाशी ;
वर बुलबुले-बेक़रार बुलबुल बाशी।
सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद ;
अंदेशा-ए कुल पेशा कुनी कुल बाशी।

अर्थः—यदि तेरे चित्त में पुष्प (प्यारे) का खयाल होगा, तो तू पुष्प (प्यारा) हो जायगा, और यदि चंचल बुलबुल का, तो व्याकुल बुलबुल हो जायगा। स्मरण रहे कि दुःखों का खयाल करनेवाला दुःख और कष्ट अपने ऊपर ले आता है, और सबका शुभचिन्तक स्वयं सब हो जाता है।

प्रत्येक प्रार्थना सुनी जाती है। जो प्रार्थना दिल से निकलती है, वही स्वीकृत होती है। इसका यह तात्पर्य है कि जैसा आपका संकल्प होगा, उसको आपके भीतर का सच्चा बल पूरा कर देगा। आपमें वह शक्ति विद्यमान है, जिससे आप देवताओं की बराबरी कर सकते हैं। देवता के अर्थ प्रकृति की शक्तियों के हैं। यदि आप वेद के अनुसार चलें, तो आप देवताओं तक पहुँच सकते हैं। आप अपने विश्वास और निश्चय के बल से प्रकृति की शक्तियों को खींचकर ला सकते हैं, और उनसे बराबरी कर सकते हैं। किंतु आपने उन साधनों को भुला दिया है। जब तक उन साधनों को आचरण में लाते थे, तब तक उस प्रकार के विचार हृदय में खचित थे, उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। किंतु जब से उन उपायों को छोड़ा, और खराब विचारों ने दिल में जगह पकड़ी, रंगत भी बदल गई। जब हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न हुआ—

"हमको नौबर राखो जी, हमको नौबर राखो जी।

मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा ;
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा।"

और हिन्दुओं में एक गुण विशेष यह है कि वे सदैव सच्चे होते हैं। अतः उनकी वह स्वाभाविक सचाई उक्त विचार पर लगाई गई, और उनका क्योंकि यह हार्दिक विचार था, इसलिये उनकी यह मनोकामना पूरी हुई। और वे इस तरह से विदेशियों के गुलाम (दास) हो गये। स्पष्ट है कि जैसा ख्याल करोगे, वैसा पाओगे। हमें अपने ख्यालों को सुधारना चाहिए। बुद्ध भगवान् ने भी यही सिखाया है। अतः न अपने संबंध में और न किसी अन्य के संबंध में अपने हृदय में मलीन विचारों को आने दो। भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर को देखो। मोहम्मद साहब के हृदय में यह बात समा गई थी, इस कारण उन्होंने सिखाया था कि (ला इलाह इल्लिला) "नहीं है कुछ सिवाय परमेश्वर के।" हजरत ईसा मसीह की नस-नस में भी यही विचार दौड़ रहा था। अतः उन्होंने भी यही कहा कि "मैं और मेरा बाप (ईश्वर) एक ही है (I and my father are one)।" अब उसको लोग समझें या न समझें; मगर असल बात यही है। जब हजरत मोहम्मद साहब के दिल में यकीन आ गया, तो उन्होंने कहा कि अगर सूर्य मेरी दाहिनी ओर और चाँद मेरी बाईं ओर आ आकर धमकाने लगें कि पीछे हट जाओ, तब भी मैं पीछे न हटूँगा। एक आदमी जो जंगलों का रहनेवाला था, उसके हृदय में इस विश्वास की आग भड़क उठी, और उसने अरब के मरुस्थल में इसके काले रेत के दानों को भड़काया। यह जर्रे बारूद के जर्रे बन गए, और योरप या अफ्रीका के पश्चिमी सिरे से लेकर एशिया के पूर्वी सिरे तक एक शताब्दी के भीतर फैल गये। यह शक्ति है आत्मबल की, यह शक्ति है विश्वास की, यह

दौर या चक्र है। इसी प्रकार सौभाग्य का तारा पूर्व से पश्चिम को गया, और फिर वहाँ से पूर्व को लौटा आ रहा है। इतिहास इसकी साक्षी देता है। देखो, एक युग था, जब भारतवर्ष का तारा अभ्युदय पर था, वहाँ से पश्चिम को चला, फ़ारस में आया। उसके पश्चात् आस्ट्रिया आदि की बारी आई। वहाँ से यूनान पहुँचा। यूनान को छोड़कर रूम गया। रूम के बाद स्पेन आदि की बारी आई। फिर इँगलैंड पर कृपादृष्टि हुई। वहाँ से अमेरिका गया। इस समय अमेरिका का पश्चिमी भाग कैलीफ़ोर्निया अत्यंत उन्नति पर है। वहाँ से जापान में आया। फिर अब कैसे कह सकते हैं कि भारतवर्ष वंचित रहेगा, इसकी बारी नहीं आएगी? अवश्य आएगी, अवश्य आएगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

सुधार

[जनवरी १९०२ में भारत-धर्म-महामण्डल भवन, मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान, श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोटों से ।]

आजकल संसार में परोपकार का बड़ा कोलाहल सुनाई देता है। यह शब्द प्रत्येक कान में सुनाई देते ही हृदय में सहानुभूति का जोश उत्पन्न करता है, और सुननेवालों के मन में सुधार करने का विचार उत्पन्न कर देता है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि परोपकार के यथार्थ अर्थ से तो लोग जानकारी नहीं प्राप्त करते, केवल बाह्य 'हाहा-हूहू' की लेक्चरबाजी में लग जाते हैं। इसीलिए परोपकार के वास्तविक अर्थ न समझने से और उस पर आचरण (अमल) न करने से सुधारक महाशय से न तो संसार का पूरा-पूरा उद्धार होता है, और न उसे स्वयं कुछ लाभ प्राप्त होता है। अतः औरों का सुधार करने से पहले सुधार के इच्छुक को सुधार के अर्थ और साधनों से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। अँगरेजों के यहाँ आजकल यह उक्ति रिवाज पकड़ती जाती है कि "पहले अपने को किसी चीज के अधिकारी बनाओ, फिर उसके प्राप्त करने की इच्छा करो (First deserve & then desire)।" किंतु वेदांत का इस विषय से सम्बन्ध नहीं। वेदांत में तो यह सिद्धांत अनादि काल से चला आता है कि "अपने को किसी वस्तु के अधिकारी तो निस्सन्देह बनाओ, किंतु उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो (Deserve only & need not desire)।" क्योंकि वेदांत पुकार-पुकार कहता है कि जिन वस्तुओं का आपने अपने को अधिकारी व है, अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् वे वस्तुएँ आपके पास

किसी प्रकार की इच्छा के किसी न किसी द्वारा अवश्य चली आयेंगी। अधिकारी बनने या होने से कोई और अभिप्राय नहीं है, वरन् इस प्रबंध का स्पष्ट तात्पर्य और उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से एक मनुष्य छोटे-छोटे पदों से उन्नति पाता हुआ एक उच्च पद पर पहुँच कर राजा का पद पा लेता है, तो उस समय वह अपने राज्य की समस्त सम्पत्ति, महल और धन-धरती के पाने का अधिकारी हो जाता है। अब वह इन वस्तुओं के पाने की इच्छा प्रकट करे या न करे, उसके सिंहासनासीन होने पर वस्तुएँ उसकी सेवा करने को अपने आप उसके पास चली आती हैं, वरन् उस समय उसका इच्छा करना अपने आपको छोटा बनाना है, और अपने को धब्बा लगाना है। यह एक कहानी है कि एक महात्मा इस बात के अधिकारी हो गए थे कि उनके निकट सांसारिक पदार्थ आनकर उनकी नित्यप्रति सेवा करें, किंतु एक अवसर पर एक व्यक्ति जब उनके लिये बताशों का थाल लाया, तो महात्माजी ने बताशे लेने की इच्छा करके अपने मुखारविन्द से यह उच्चारण किया कि दो बताशे हमको दे दो। इस पर थाल लानेवाले ने दो बताशे तो महात्माजी को दे दिए, किंतु शेष बताशों को उन्हें लालची समझने के कारण वहाँ रखना उचित न समझकर वह व्यक्ति थाल लौटा ले गया। इस प्रकार महात्माजी शेष बताशों से भी वंचित रहे, और इच्छा प्रकट करने के कारण थाल लानेवाले की दृष्टि में भी कम उतरे। इसी तरह अधिकारी होने पर भी अधिकार-योग्य वस्तु की इच्छा प्रकट करना अपने अधिकारों को खोना और अपनी इच्छा को बट्टा लगाना होता है। भगवन्! यदि आप अपने आपको समस्त वस्तुओं का मालिक और अधिकारी बनाना चाहते हैं, तो उठो, अपने स्वरूप में झण्डे गाड़ो, अपने असली स्वरूप में लीन हो जाओ,

हैं। अतएव अपने आपको अपने स्वरूप में लीन करना अर्थात् निज स्वरूप में निमग्न होना ही परोपकार करना है। तात्पर्य यह कि आपके मन का अपने सूर्य रूपी आत्मा की किरणों के द्वारा अहंकार रूपी भारी बोझ से शून्य और हल्का होकर अपने स्वरूप में उड़ जाना, अर्थात् लीन हो जाना, ही संसार के और पुरुषों का सुधारना है, नहीं तो सुधारक महाशय या सुधार के इच्छुक जितना ही अपने वास्तविक स्वरूप से नीचे रहेंगे, उतना ही शेष मनुष्य निचले दर्जों पर रहेंगे और परोपकार करने के अर्थों का मिथ्या वरन् उल्टा व्यवहार करते रहेंगे; क्योंकि अपने स्वरूप में अवस्थान न करना ही दूसरों का परोपकार न करना है, वरन् अपने आपको नीचे गिराए रखना है। इसलिये ऐ सुधार के इच्छुको! और ऐ संसार का उद्धार करनेवालो! यदि संसार का उद्धार करना चाहते हो, तो उठो, अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, शेष सब लोग अपने आप उन्नति कर लेंगे, या यों कहो कि शेष सब लोगों का बिना आपकी इच्छा और प्रयत्न के अपने आप भला हो जायगा; और आपमें भी जब अपने स्वरूप में निष्ठा होगी, तो सारे संसार को हिला देने की शक्ति आ जायगी, अर्थात् अनन्त स्वरूप से अभेद होने के कारण अनन्त शक्ति भी आपमें भर जायगी। इस प्रकार आपका केवल राजगद्दी सँभालना ही सारे काम-धन्धे को ठीक कर देता है, क्योंकि बिना असली साम्राज्य के सिंहासन पर स्थित हुए साम्राज्य के काम पूरे नहीं होते, अतः अपने स्वरूप में लीन होना परोपकार के लिये मुख्य उपाय समझना चाहिए, अपने अनन्त स्वरूप से मन को अभेद करने से ही अनन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। जैसे एक नमक की डली यदि खाली गिलास में डाली जाय, तो एक परिच्छिन्न स्थान घेरती है, और जब पानी से भरे हुए गिलास में डाली

जाय, तो पानी में घुल जाने से (अर्थात् जल के साथ मिल जाने से) वह डली अपनी परिच्छिन्न जगह छोड़कर गिलास के समस्त पानी में फैल जाती है और समस्त जल में नमकीन स्वाद देने की शक्ति रखती है, या यों कहा जाय कि जितना ही नमक की डली अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़ती जाती है, और पानी में समाती जाती है, उसमें उतना ही स्वाद फैलाने की शक्ति बढ़ती जाती है; इसी प्रकार मन यद्यपि परिच्छिन्न शक्ति का खंड माना गया है, किंतु जितना ही वह अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़कर अपने स्वरूप के अनन्त सागर से अभेद होता है, उतना ही उसकी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ फैलती भी दिखाई देती हैं, अर्थात् उतना ही मन अपरिच्छिन्न शक्तियाँ प्रकट करने का बल भी उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार से, भगवन्! यदि आप अपनी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ प्रकट किया चाहते हैं, और उन अपरिच्छिन्न शक्तियों से संसार का उद्धार किया चाहते हैं, तो मन को कैवल्य-स्वरूप में इस प्रकार लीन कर दो कि जैसे मजनूँ के प्रेम के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है—

> ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली;
> इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिए।

अर्थात् मजनूँ लैला के साथ ऐसा अभेद हुआ था कि लैला और मजनूँ में बिलकुल अंतर न रहा, वरन् लैला की फ़स्द लेने पर भी ख़ून मजनूँ की नस से निकला। जितना ही आप अपने को परिच्छिन्न करते जाओगे, अर्थात् नमक की डली की भाँति परिमित शरीर में मन को घेरे रक्खोगे, उतना ही आप अपने को असमर्थ और शक्ति-हीन बनाते जाओगे। अतः मन को शरीर के ख्याल से दूर हटाकर आनंदघन रूपी समुद्र में लीन

धर्म वह है, जो भीतर से स्वतः निकले; न कि वह जो बाहर से भीतर ठूँसा जावे। सूर्य चमकता है कि चीजें उत्पन्न हों। नक़ल से काम नहीं निकलता। सवार बुद्धिमान् पशु (Rational animal) है, घोड़ा बिलकुल पशु है। घोड़े को सवार की रानों के नीचे से मत खींचो। जब से काम नहीं चलता, प्रेम से चलता है।

(१) जिसकी स्थिति "दासोऽहम्" पर है, वह उसी प्रकार की पुस्तकों को पढ़े, जैसे इंजील, भक्तमाल, भागवत पुराण आदि। इसी से उस मनुष्य को ठाड़स होगा। मनोविज्ञान (Psychology) अर्थात् अन्तःकरण शास्त्र को पढ़ने से बड़ा लाभ होता है।

(२) जिसकी स्थिति 'तवैवाहम्' में है। अर्थात् मैं तेरा हूँ, उसको विनयपत्रिका, सूरश्यामवाले पद, गीतगोविंद, नारद के भक्तिसूत्र और कई प्रकार के भजन, रामायण के कोई-कोई अंश, जैसे रामायण का वह अंश, जहाँ राम वन जाते समय लक्ष्मण और सीता से विलग होते हैं, पढ़ना चाहिए।

(३) तीसरी श्रेणीवालों अर्थात् 'त्वमेवाहम्' की स्थितिवालों के लिये बुल्लाशाह और गोपालसिंह की वाणियों के पढ़ने से भी बड़ा लाभ होता है। ये दो पंजाबी हैं। मगर गोपालसिंह की वाणी ने अभी अधिक प्रसिद्धि नहीं पाई है। इन वाणियों को पढ़ते पढ़ते मारे प्रेम के आँखें बंद हो जाती हैं। गुरु ग्रंथसाहब में दोनों श्रेणी की अपार वाणियाँ हैं, तीसरी श्रेणी की बहुत कम। पाठ करते हुए जहाँ देखा कि चित्त एकाग्र हो गया, किताब को छोड़ दो। घोड़े पर आप सवार हो, न कि घोड़ा आप पर सवार हो। पाठ किसके लिये है? भीतर के आनंद के लिये। लोग पढ़ते हैं, मगर पागुर (जुगाली) नहीं करते। अगर आप पागुर न करोगे, तो मानसिक अजीर्ण (Mental dyspepsia) हो जायगा। राम जब योगवासिष्ठ पढ़ता था, तो उसका नियम था कि उसने थोड़ासा पढ़ा और फिर किताब को बंद कर दिया

धर्म वह है, जो भीतर से स्वतः निकले; न कि वह जो बाहर से भीतर ठूँसा जाये। सूर्य चमकता है कि चीजें उत्पन्न हों। नक़ल से काम नहीं निकलता। सवार बुद्धिमान् पशु (Rational animal) है, घोड़ा बिलकुल पशु है। घोड़े को सवार को रानों के नीचे से मत खींचो। जब से काम नहीं चलता, प्रेम से चलता है।

(१) जिसकी स्थिति "दासोऽहम्" पर है, वह उसी प्रकार की पुस्तकों को पढ़े, जैसे इंजील, भक्तमाल, भागवत पुराण आदि। इसी से उस मनुष्य को ताड़स होगा। मनोविज्ञान (Psychology) अर्थात् अन्तःकरण शास्त्र को पढ़ने से बड़ा लाभ होता है।

(२) जिसकी स्थिति 'तवैवाहम्' में है। अर्थात् मैं तेरा हूँ, उसको विनयपत्रिका, सूरश्यामवाले पद, गीतगोविंद, नारद के भक्तिसूत्र और कई प्रकार के भजन, रामायण के कोई-कोई अंश, जैसे रामायण का वह अंश, जहाँ राम वन जाते समय लक्ष्मण और सीता से विलग होते हैं, पढ़ना चाहिए।

(३) तीसरी श्रेणीवालों अर्थात् 'त्वमेवाहम्' की स्थितिवालों के लिये दुलाशाह और गोपालसिंह की वाणियों के पढ़ने से भी बड़ा लाभ होता है। ये दो पंजाबी हैं। मगर गोपालसिंह की वाणी ने अभी अधिक प्रसिद्धि नहीं पाई है। इन वाणियों को पढ़ते पढ़ते मारे प्रेम के आँसू बंद हो जाती हैं। गुरु ग्रंथसाहब में दोनों श्रेणी की अपार वाणियाँ हैं, तीसरी श्रेणी की बहुत कम। पाठ करते हुए जहाँ देखा कि चित्त एकाग्र हो गया, किताब को छोड़ दो। घोड़े पर आप सवार हो, न कि घोड़ा आप पर सवार हो। पाठ किसके लिये है? भीतर के आनंद के लिये। लोग पढ़ते हैं, मगर पाथुर (जुगाली) नहीं करते। अगर आप पाथुर न करेंगे, तो मानसिक अजीर्ण ([illegible]) हो जायगा। राम जब गोपालसिंह पढ़ता था, तो उसका नियम था कि उसने थोड़ासा पढ़ा और फिर किताब को बंद कर दी

तत्काल छाती कूटने और रोने लगा, और उस दिन से इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे। राम बचपन में बड़ा हठी था। जिस बात के करने की हठ करता था, उसको करके छोड़ता था। गणित के प्रश्न हल करने लगा, तो उसमें जी-जान से लग गया, खाना-पीना, खेलना-कूदना सब बंद। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ प्रश्न उसने हल करने का इरादा किया। रात-भर हल करता रहा, मगर सब सवाल हल न हुए। बस, सवेरा होते ही कोठे पर चढ़ गया, और ऊपर से गिरकर मरने लगा। मगर खयाल आया कि मरूँ तो क्योंकर? सवाल तो अभी पूरे हल नहीं हुए। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार से प्रायः हठ किया करता था। और यही हठ बाद को दृढ़ता के रूप में परिवर्तित हो गया। संन्यास लेने से प्रथम राम एक बार कश्मीर को चला गया था। फिर वहाँ से आकर कुछ दिन घर पर रहा। मगर बकरे की मा कब तक खैर मनाएगी, दूसरी बार फिर निकल पड़ा। वर्ग (क्लास) में जब पढ़ाता था, तब प्रायः गणित-शास्त्र का व्याख्यान भक्ति के विषय में परिणत हो जाता था। अंत में उसको सांसारिक संबंध छोड़ने ही पड़े। हरिद्वार में पहुँचा। हरिद्वार से हृषिकेश के मार्ग से सत्यनारायण के मंदिर पर पहुँचा। अपने रेशमी वस्त्र और सोने की जंजीर और घड़ी आदि सब इधर-उधर फेंक दिये। तीन सौ रुपए घर से और मँगवाये। वह भी खर्च कर डाले। फकीरों, साधुओं से मिला। वार्तालाप हुई। सबसे शास्त्रार्थ हुए। तब राम ने यह देखा कि ज्ञानी ज्ञान छाँटने में किसी से कम नहीं हूँ। मगर हाय! शांति फिर भी नहीं है। अब इस शांति की खोज में पगला फिरता है। एक दिन प्रातःकाल सत्यनारायण के मंदिर से जहाँ वह ठहरा था, सब [illegible] को छोड़कर [illegible] भाग निकला। मगर एक संस्कृत

चित्त पर प्रभाव डाले, साथ रख लो। मगर जब वह वस्तु भी मिल जाय, तो पुस्तक को भी फेंक दो।

(१) पहली चोट (क) पहला साधन—पढ़ना गुली-डंडे की पहली चोट है। फिर दूसरी चोट अभ्यास की है। पहला दर्जा पाठ; दूसरा दर्जा जप।

(ख) दूसरा साधन—अभ्यास, संयम और आकर्षण से अपने शरीरों को उड़ा ले जाओ। क्यों न हम प्रकृति के दृश्य से आकाश तक उड़ते चले जायँ। प्रातःकाल के समय नदियों, और बाग़ों में सूर्य के सामने आ जायँ कि जिससे मन उच्च हो। महात्माओं के सत्संग से भी मन महान् हो जाता है। यह गुलीडंडे की पहली चोट है।

(२) दूसरी चोट—"चुनाँ पुर शुद फ़िज़ाए-सीना अज़ दोस्त ;
ख़याले ख़्वेश गुम शुद अज़ ज़मीरम।"

अर्थात् मेरे हृदय की भूमि मेरे मित्र से ऐसी भरी हुई है कि मेरे दिल से अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नष्ट हो गया। वातावरण (atmosphere) में जब भराव (saturation) आ जाता है, तब किताब को उठाकर ताक़ में रख दो। जब छैल-छबीले की मूर्ति से आँख लड़ी, तब ज्योति में ज्योति समा गई। जब इन मनोहर दृश्यों से चित्त में उमंग भर आवे, तब ओ३म्, ओ३म् का गाना शुरू कर दो। यह ओ३म् का गाना ब्रह्मांड का संगीत अर्थात् ब्रह्मध्वनि (Music of the Sphere) है। जिसको महात्माओं ने सुना है, और सुनाते हैं, और जो सुनना चाहे, वह सुन सकता है—

नग़मे सुरीले ओ३म् के हैं इससे आ रहे,
नदियाँ परिंदे बाद में हैं सुर मिला रहे।

(३) अनुराग को न कुचलो। ऐसे अनुराग को रोक दे मानो [illegible] यूसुफ़ को कुएँ में डाल देना है। जब वह